ISSN-0970-6518

हरियाणा खेती

वर्ष 53 अंक 6

वार्षिक चंदा ₹ 150 जून 2020 आजीवन सदस्यता ₹ 1500

प्रकाशन अनुभाग

विस्तार शिक्षा निदेशालय

चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा खेती

निदेशक, शिक्षा विभाग हरियाणा द्वारा उच्च/उच्चतर विद्यालयों के लिए उनके पत्र क्रमांक 25/34.7 4 पु. (2) दिनांक 4.9.74 द्वारा अनुमोदित

© कापीराइट प्रकाशकाधीन

वर्ष 53 | जून 2020 | अंक 6

इस अंक में

लेख का नाम	लेखक का नाम	पृष्ठ
कपास के रस चूसने वाले कीट: समन्वित प्रबंधन	✍ नवीन राव, नीरू डूमरा एवं निर्मल सिंह	1
कपास के बीज व मृदाजनित रोगों का नियंत्रण	✍ मनमोहन, जगदीप सिंह एवं ओमेंद्र सांगवान	2
कैसे करें गेहूं का सही भंडारण	✍ पुनीत कुमार एवं नेहा शर्मा	3
कोरोना वायरस संक्रमण से बचाव हेतु : कृषि कार्य के समय सावधानियां	✍ अशोक कुमार, सूबे सिंह एवं राजेश कुमार	4
ग्रीष्मकालीन मूंग : मुख्य कीट एवं रोकथाम	✍ दिलबाग सिंह, जोगिंदर सिंह एवं प्रेमदीप	4
कपास फसल : रोग एवं उनकी रोकथाम	✍ एन. के. यादव, चित्रलेखा एवं नवीश कुमार कम्बोज	5
खरीफ मूंग : पैदावार कैसे बढ़ाएं	✍ सत्यजीत, एस. पी. यादव एवं बिक्रम सिंह	6
बैंगन की भरपूर पैदावार - कीटों व बीमारियों के नियन्त्रण से	✍ जगत सिंह, धर्मबीर दूहन एवं विजयपाल पंघाल	7
प्लास्टिक मल्च का बागवानी में उपयोग	✍ संजय कुमार, रीतिका एवं कीर्ति सिंह	8
सीमित जल उपलब्धता की स्थिति में - गन्ना फसल का प्रबंधन	✍ मेहर चन्द, प्रीति शर्मा एवं नरेन्द्र सिंह	9
कृषि-आधारित उद्योगों के प्रोत्साहन हेतु योजनाएं एवं वित्तीय सहायता संस्थान	✍ भरत सिंह घणघस, राजेश कुमार एवं प्रदीप कुमार चहल	11
ई-कचरा : पर्यावरण के लिए खतरा	✍ रोहतास कुमार, रूही एवं एच. के. यादव	12
धान की सीधी बिजाई में खरपतवारों की रोकथाम	✍ टोडर मल पूनियां, मनजीत एवं सतबीर सिंह पूनियां	20
मिर्च की उन्नत खेती	✍ सुमित देसवाल, अर्चना बराड़ एवं देविंदर सिंह	21
चटाईनुमा धान की (मैट टाईप) पौध उगाने की विधि	✍ अनिल सरोहा, संदीप आंतिल एवं कुलदीप दहिया	22
कृषक और ग्राम : तब और अब	✍ सुषमा आनन्द	23
शुष्क क्षेत्रों में सावनी फसलों की पैदावार बढ़ाने हेतू सस्य क्रियाएं	✍ सुरेंद्र कुमार शर्मा, अमित कुमार एवं प्रवीन कुमार	24
सुदूर संवेदन के उपपोग से वन मापदंडों का मूल्यांकन	✍ धर्मेन्द्र सिंह, चिन्तन नन्दा एवं संदीप आर्य	25
खरीफ मूंग की उन्नत खेती : समुचित पोषक तत्त्व प्रबंधन	✍ पूजा रानी, नरेंदर कुमार एवं विकास कुमार	27
लू लगने के कारण और उनका उपचार	✍ संतोष रानी, पूनम यादव एवं संदीप भाकर	28
Benefits of Crop Residue Management	✍ N. K. Goyal, Sandeep Rawal and Sube Singh	29
Diversification of Rice-Wheat System in Haryana through Maize : Scope and Utilization	✍ Preeti Sharma, M. C. Kamboj and Narender Singh	30
Save Paddy Crop from Diseases	✍ Fateh Singh, Aditya and J. N. Bhatia	32
स्थाई स्तम्भ : जुलाई मास के कृषि कार्य		**13**

तकनीकी सलाहकार
डॉ. आर. एस. हुड्डा
निदेशक, विस्तार शिक्षा

सह-निदेशक (प्रकाशन)
डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी

संपादक
डॉ. सुषमा आनंद
सह-निदेशक (हिन्दी)

संकलन
डॉ. सूबे सिंह
सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

संपादक (अंग्रेज़ी)
सुनीता सांगवान
प्रकाशन अनुभाग

डीटीपी एवं आवरण सज्जा
राजेश कुमार
प्रकाशन अनुभाग

कपास के रस चूसने वाले कीट : समन्वित प्रबंधन

✍ **नवीन राव, नीरू डूमरा एवं निर्मल सिंह**
कीट विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कपास के रस चूसने वाले कीटों में सफेद मक्खी, हरा तेला, चूरडा, चेपा और मिली बग प्रमुख कीट हैं जो कपास की फसल को जून से सितंबर तक अधिक नुकसान करते हैं। सफेद मक्खी एक बहुभक्षी कीट है जो कपास की प्रांरभिक अवस्था से लेकर चुगाई व कटाई तक फसल में रहती है। कपास के अलावा यह खरीफ मौसम में 100 से भी अधिक पौधों पर आक्रमण करती है। इस कीट के शिशु और प्रौढ़ दोनों ही पत्तियों की निचली सतह पर रहकर रस चूसते हैं। प्रौढ़ 1-1.5 मि.मी. लम्बे, सफेद पंखों व पीले शरीर वाले होते हैं। जबकि शिशु हल्के पीले, चपटे होते हैं। ये फसल को दो तरह से नुकसान पहुंचाते हैं। एक तो रस चूसने की वजह से, जिससे पौधा कमज़ोर हो जाता है तथा दूसरा पत्तियों पर चिपचिपा पदार्थ छोड़ने की वजह से, जिस पर काली फफूंद उग जाती है जो कि पौधे के भोजन बनाने की प्रक्रिया में बाधा डालती है। यह कीट कपास में मरोड़िया रोग फैलाने में भी सहायक है। जिससे पौधे की बढ़वार रुक जाती है। इसका प्रकोप अगस्त-सितम्बर मास में अधिक होता है तथा शुष्क मौसम व अनियमित बारिश से प्रकोप बढ़ जाता है तथा तेज बारिश के कारण जनसंख्या कम हो जाती है।

चेपा के शिशु और प्रौढ़ दोनों पत्तियों की निचली सतह व कोंपलों से लगातार रस चूसते रहते हैं। जिसके कारण पत्ते मुड़ने लगते हैं। ये कीट छोटे आकार के गोल, हल्के पीले रंग के होते हैं और एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ भी छोड़ते हैं जिससे पौधों पर काली फफूंद उग जाती है। ग्रसित पत्ते तेल में डूबे हुए से लगते हैं। इस कीट के आक्रमण के कारण पौधा कमज़ोर हो जाता है, पत्ते मुड़ जाते हैं और झड़ जाते हैं। इस कीट का हरियाणा में कपास की फसल में प्रकोप कम पाया जाता है।

हरा तेला के शिशु व प्रौढ़ दोनों ही कपास को नुकसान पहुंचाते हैं। ये हरे रंग के होते हैं जो कि पत्तियों की निचली सतह पर रहते हैं और टेढ़े चलते दिखाई देते हैं। इनके आक्रमण से पत्ते किनारों से पीले पड़ जाते हैं तथा नीचे की ओर मुड़ने लगते हैं, बाद में कप नुमा हो जाते हैं। पत्तियां पीली व लाल होकर सूख जाती हैं और ज़मीन पर गिर जाती हैं। पौधों की बढ़वार रुक जाती है व कलियां, फूल गिरने लगते हैं। जिससे पैदावार कम हो जाती है। हरा तेला जुलाई से अगस्त माह में सर्वाधिक हानि पहुंचाता है। चूरड़ा कीट छोटे पतले शरीर वाले भूरे रंग के होते हैं जो पत्तों की निचली सतह पर नाड़ियों के साथ चलते दिखाई देते हैं। प्रौढ़ प्राय: गहरे भूरे रंग के होते हैं। शिशु तथा प्रौढ़ पत्तों की निचली सतह को खुरच कर रस चूसते हैं। चूरड़ा ग्रसित पत्तियों की निचली सतह को अगर धूप की ओर किया जाए तो वह चांदी की तरह चमकती है तथा पत्तियां ऊपर की ओर मुड़ जाती हैं। अगर लम्बे समय तक मौसम खुश्क रहे तो इस कीट का प्रकोप काफी बढ़ जाता है जिससे पत्ते सूख कर गिर जाते हैं।

मीली बग एक बहुभक्षी कीड़ा है जो पौधों के विभिन्न भागों में समूह में एकत्र होकर रस चूसते हैं तथा पौधे के जिस भी भाग पर यह अपनी कालोनी बना लेते हैं, उसे सुखा देते हैं। यह कीट लगभग 3-4 मि.मी. लंबा व सफेद रंग का होता है। इसका शरीर पंख रहित होता है। इस कीट से प्रभावित पौधों के पत्ते व फल गिर जाते हैं। यह कीट एक प्रकार का मधुस्राव छोड़ता है। जिस पर काली फफूंद लग जाती है। मीली बग ग्रसित पौधों पर प्राय: काली/भूरी चींटियां काफी संख्या में चलती नज़र आती हैं। ये कीट कपास, भिण्डी, टमाटर, मिर्च, बैंगन, आलू, गवार, सूरजमुखी, गाजर घास, गुथपटना, पुठकण्डा, इटसिट (साटी), कंघी बूटी, पीली बूटी पर अधिक पाया जाता है।

समन्वित कीट प्रबंधन

समन्वित कीट प्रबंधन वह व्यवस्था है जिसमें कीट नियन्त्रण की किसी एक विधि पर निर्भर न रहकर सभी संभावित विधियों का समावेश किया जाता है, जिनको फसल की बिजाई के पहले से लेकर कटाई तक इस प्रकार प्रयोग किया जाता है कि नाशक कीटों की संख्या आर्थिक हानि स्तर से नीचे ही बनी रहे और रसायनों का प्रयोग कम से कम हो ताकि पर्यावरण व मित्र कीटों को उनके हानिकारक प्रभाव से बचाया जा सके।

सारणी-1 कपास के मुख्य कीटों के लिए आर्थिक हानि स्तर

क्र. सं.	कीट	आर्थिक हानि स्तर
1.	सफेद मक्खी	6-8 प्रौढ़/पत्ता या 50 प्रतिशत पत्तियों पर मधुरस का दिखाई देना।
2.	चूरड़ा (थ्रिप्स)	30 थ्रिप्स/3 पत्ता या 15-20 प्रतिशत प्रभावित पौधे।
3.	हरा तेला	2 शिशु /पत्ता या 20 प्रतिशत पौधों के पत्ते किनारों से पीले पड़कर सूखने लगें।

सस्य एवं यान्त्रिक क्रियाएं :

- ❑ सफेद मक्खी और मरोड़िया रोग के उच्च संक्रमण वाले क्षेत्र में देसी कपास उगायें।
- ❑ बुवाई 15 मई तक पूरी करें क्योंकि पछेती बुवाई में सफेद मक्खी का संक्रमण अधिक होता है।
- ❑ नाइट्रोजनयुक्त उर्वरक का अत्यधिक उपयोग न करें।
- ❑ समय रहते सफेद मक्खी के प्रबंधन के लिए फरवरी से बैंगन, कद्दू वर्गीय (खीरा, तरबूज, चप्पन कद्दू), टमाटर, मिर्च, भिंडी पर तथा अप्रैल से कपास और मूंग पर सफेद मक्खी की जनसंख्या की नियमित निगरानी करें।
- ❑ कपास की फसल के प्रारंभिक चरण के दौरान सफेद मक्खी की शुरुआती जनसंख्या की जांच के लिए कम लागत वाले पीले चिपचिपे कार्ड लगाएं।
- ❑ कपास की फसल के साथ भिन्डी की मिश्रित खेती न करें तथा मेड़ों पर भी भिण्डी न लगाएं।
- ❑ कीटनाशकों का पूरे पौधे पर सही वितरण के लिए सालिड कोन नोजल का प्रयोग करें।
- ❑ कीटनाशकों का छिड़काव दोपहर 12 बजे से पहले या फिर शाम के समय करें।
- ❑ सफेद मक्खी के बेहतर नियंत्रण के लिए कीटनाशकों का प्रयोग सामुदायिक स्तर पर करें।
- ❑ बिना सिफारिश विभिन्न कीटनाशकों का टैंक मिश्रण अथवा मिश्रित कीटनाशक उत्पादों का प्रयोग न करें।
- ❑ मीली बग शुरुआत में कुछ पौधों तथा कुछ पंक्तियों तक ही सीमित रहता है तथा उसे नियंत्रित करने के लिए ग्रसित पौधों पर छिड़काव करें।
- ❑ अंतिम चुगाई के बाद मीलीबग संक्रमित कतारों में छिड़काव करें।

रासायनिक नियंत्रण :

- ❑ फसल की शुरुआत में सफेद मक्खी के नियंत्रण के लिए नीम आधारित दवा (निम्बिशीडिन या अचूक) 1-0 लीटर प्रति एकड़ की दर से छिड़काव किया जाना चाहिए।
- ❑ 30 दिन तक की फसल पर थ्रिप्स के प्रबंधन के लिए किसी भी कीटनाशक का छिड़काव न करें। *(शेष पृष्ठ 7 पर)*

कपास के बीज व मृदाजनित रोगों का नियंत्रण

✍ **मनमोहन, जगदीप सिंह एवं ओमेंद्र सांगवान**
कपास अनुभाग, आनुवंशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अन्य फसलों की भांति कपास पर भी बहुत सी बीज व ज़मीन से आने वाली बीमारियां लगती हैं जोकि फफूंद और जीवाणुओं द्वारा होती हैं। जिनके कारण बीज गल जाता है, इसका जमाव कम हो जाता है और शिशु पौधे मर जाते हैं। ज़मीन में फफूंद होने के कारण 10-90 प्रतिशत हानि अनुमानित की गई है। हरियाणा में बीज व पौध गलन, उखेड़ा (सूखा रोग) और जड़गलन आदि बीज व ज़मीन से आने वाले मुख्य रोग हैं। इसके कारण, लक्षण व उपचार निम्नलिखित हैं:

बीज व पौध गलन : इस बीमारी का प्रकोप पौधे की शुरू की अवस्था में होता है। जमाव के समय ही बीजों का गलना शुरू हो जाता है या जमाव के तुरंत बाद अकुंर भी गलने लगता है। इसके कारण छोटे पौधों के तनों पर भूमि की सतह के आसपास, पौधे के तंतु गलकर कमज़ोर हो जाते हैं और इस स्थान से टूट के गिर जाते हैं। इसका प्रकोप कपास के छोटे पौधे पर, उन क्षेत्रों में अधिक होता है, जहां भूमि में नमी की बहुतायत हो जहां सेम की समस्या हो। इस रोग के कारण कभी-कभी बीज अंकुरित होने से पहले ही मर जाता है।

पौध रोग : इस बीमारी का प्रकोप भूमिजनित व बीजजनित फफूंद व जीवाणु के कारण होता है। इसके कारण आरंभ से फसल को भारी हानि होती है क्योंकि मिटी व मिट्टी से उत्पन्न बहुत से फफूंद छोटी पौध को नष्ट कर देते हैं। प्राय: रोगी शिशु पौधों पर लाल-लाल धब्बे बनते हैं और सारे तने पर छा जाते हैं जिसमें पौधा ज़मीन पर गिर कर मर जाता है। अन्य लक्षणों में छोटी पत्तियों पर पनियादार बिना आकार के धब्बे नज़र आते हैं, कई धब्बे मिलकर अधिक स्थान घेर लेते हैं जिस कारण पूरी पत्ती मर जाती है। इस रोग से दो या तीन सप्ताह आयु की पौध अधिक रोगग्रस्त होती है। ज़मीन की सतह से कुछ सैंटीमीटर तक जड़ गल जाती है।

जड़ गलनरोग : कपास का जड़ गलन रोग उत्तरी भारत में एक प्रमुख समस्या है। यह रोग राइजोकटोनिया सोलनी एवं राइजोकटोनिया बटाटीकोला नामक फफूंद से होता है। इस रोग के जीवाणु ज़मीन में रहते हैं। इस रोग के लक्षण जून के महीने में दिखाई देते हैं तथा यह रोग जुलाई एवं अगस्त महीने में अधिकतम फैलता है। यह बीमारी कभी-कभी भयंकर रूप धारण कर लेती है और कपास की पैदावार पर काफी बुरा प्रभाव डालती है। इसका प्रकोप समस्त हरियाणा के कपास उगाने वाले क्षेत्रों में विशेषत: सिंचित व नमी वाले खेतों में अधिक होता है। अधिक भूमिगत तापक्रम भी इस रोग की वृद्धि में सहायक सिद्ध होता है। जैसे ही पौधे की जड़ पर इस बीमारी के जीवाणु का प्रभाव आरंभ होता है, स्वस्थ पौधा ऊपर से नीचे की ओर मुरझाना शुरू हो जाता है और पत्तियां ऊपर से नीचे तक झुक जाती हैं तथा एक दो दिन में पौधा पूर्ण रुप से मुरझा जाता है। एक बार पौधा रोग ग्रसित होने पर इसका उपचार नहीं है क्योंकि जीवाणुओं का प्रभाव जड़ पर होता है। रोगग्रस्त पौधों को स्वस्थ पौधों की अपेक्षा आसानी से उखाड़ा जा सकता है। इन पौधों की जड़ें पूरी तरह गल जाती हैं और कुछ चिपचिपी सी गली हुई लगती हैं, छाल भी उतरने लगती है तथा जड़ रेशेदार हो जाती है।

उखेड़ा (सूखा रोग) : यह रोग फ्यूजेरियम आक्सीस्पोरस एसपी वासिन्फैकटम नामक फफूंद द्वारा होता है। यह रोग देसी कपास में अधिक पाया जाता है तथा यह रोग पौधे की किसी भी अवस्था में प्रकट हो सकता है। इस रोग के जीवाणु ज़मीन में रहते हैं और फफूंद के तंतु पौधों की जड़ों में घुसकर जाइलम द्वारा पौधे के ऊपरी हिस्सों में पहुंच जाते हैं। तंतु अंशत: या पूर्णत: जाइलम को बंद कर देते हैं जिससे पौधों को ज़मीन से पोषक तत्व मिलना या तो समाप्त हो जाता है या कम मिल पाता है जिसके फलस्वरूप आंरभ में नीचे की पत्तियां किनारों से पीली पड़नी शुरू हो जाती हैं और पीलापन अन्दर की ओर बढ़ना आरम्भ हो जाता है और कुछ ही समय में पूरी की पूरी पत्ती पीली भूरी होकर गिर जाती है। यह रोग पौधे की निचली पत्तियों से होकर ऊपर की ओर बढ़ता है। ऐसे पौधों को उखाड़ कर व उनकी जड़ों को लंबाई में चीर कर देखा जाए तो भूरे रंग की धारी-सी दिखाई देती है जोकि पौधे को खुराक नहीं जाने देती और पौधा सूख जाता है।

रोग प्रबंधन : पौधों को बीज में रहने वाले जीवाणु तथा ज़मीन से उत्पन्न बहुत से फफूंदों से बचाव के लिए फफूंदनाशक दवाइयों से बीज उपचार बहुत आवश्यक है।

बीज उपचार : बिजाई से पहले बीज का निम्नलिखित दवाइयों से रोएं वाले बीज का 6-8 घंटे तथा रोएं उतारे गये बीज का केवल दो घंटे तक उपचार करें।

एमिसान	-	5 ग्राम
स्ट्रैप्टोसाईक्लिन	-	1 ग्राम
पानी	-	10 लीटर
कपास का बीज	-	5-6 कि.ग्रा. रोएंदार, 6-8 कि.ग्रा. रोएं रहित

जिन क्षेत्रों में दीमक की समस्या हो वहां उपरोक्त उपचार के बाद बीज को थोड़ा सुखाकर 10 मि.ली. क्लोरपाइरीफॉस व 10 मि.ली. पानी प्रति किलो बीज की दर से मिलाकर थोड़ा-थोड़ा बीज पर डालें व अच्छी तरह मिलाएं तथा बाद में बिजाई करें।

जड़ गलन की समस्या वाले क्षेत्रों में पीछे बताये गए उपचारों के बाद बीज का 2 ग्राम बाविस्टिन प्रति कि. ग्रा. बीज के हिसाब से सूखा उपचार करें यानि बीज को फफूंदनाशक घोल से निकाल कर कुछ समय तक छाया में सुखाकर बाद में उपचार करें। यह उपचार 40-50 दिन तक ही फसल को बचा सकता है। बाद में लक्षण आने पर प्रभावित पौधे के साथ बचे हुए अच्छे यानि स्वस्थ पौधों को 0-2 प्रतिशत बाविस्टिन के घोल से उपचार करें।

फफूंदनाशक दवाइयों से उपचारित करने से पौधों को ज़मीन से उत्पन्न बहुत से फफूंदों तथा बीज के अंदर व ऊपरी सतह पर पाए जाने वाले जीवाणुओं से बचाव हो जाता है और यह उपचार फसल को 40-50 दिन तक ही बचा सकता है। इसके बाद छिडकाव कार्यक्रम आरंभ कर दें।

जड़ गलन रोग का सामूहिक प्रबंधन :

- बीमारी रहित खेत का चयन करें। जड़ गलन की समस्या वाले खेतों में फसल-चक्र अपनाएं, कपास न लेकर बाजरा, ज्वार इत्यादि लें।
- फसल लेने के बाद खेतों की घनी व गहरी जुताई करें ताकि पौधों के बचे हुए निचले हिस्से व ठूंठ गल जाएं। खेत में गहरी जुताई के बाद जड़ गलन वाले भाग में भूसा या कपास की छंटियां डाल कर आग लगा दें ताकि तेज़ गर्मी से फफूंद के जीवाणु नष्ट हो जाएं।
- बीज का उपचार बाविस्टिन 2 ग्राम प्रति किलो ग्राम कपास के बीज से करें। जड़ गलन के लक्षण आते ही स्वस्थ पौधों 0-2 प्रतिशत बाविस्टिन के घोल से उपचारित करें।
- सिंचाई और वर्षा से पहले खेत में जड़ गलन रोगग्रस्त हिस्से की निशानदेही करें। जड़ गलन वाले खेत में कपास की एक लाइन के बाद मोठ की एक लाइन बोएं। जिन खेतों में जड़ गलन की समस्या रही हो वहां कम से कम तीन वर्ष तक कपास न बोएं।
- सितम्बर-अक्तूबर में 2-5 प्रतिशत यूरिया के घोल का छिड़काव करें। खादों का संतुलित प्रयोग करें। ●

कैसे करें गेहूं का सही भंडारण

✍ पुनीत कुमार एवं नेहा शर्मा
आनुवंशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत एक कृषि प्रधान देश है तथा विश्व का दूसरा बड़ा गेहूं उत्पादक देश है। किसान की मेहनत के साथ-साथ समयानुसार रासायनिक खाद, उन्नत बीज, कीट, रोग एवं खरपतवारनाशक दवाइयों के प्रयोग के कारण कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है। अनाज को बोने से लेकर घर तक लाने में किसान को अनेक प्रकृतिक आपदाओं का सामना करना पड़ता है। इन सब परेशानियों का सामना करने के पश्चात् तथा खर्चा करके उत्पन्न अनाज अगर घर में लाकर सावधानी से न रखा जाये तो काफी हानि होती है। हमारी गेहूं की भंडारण क्षमता पैदावार के सामने बौनी नज़र आ रही है। इसके उत्पादन का 10 प्रतिशत कीड़ों, चूहों, फफूंदी तथा नमी द्वारा खराब हो जाता है। खपरा, सुरसरी व ढ़ोरा जैसे कीड़े गेहूं की पौष्टिकता, बीज के उगान पर भी बुरा असर डालते हैं। ये कीड़े और चूहे अनाज को खाने के अलावा अपने बालों, मृत शरीर तथा मल-मूत्र आदि से खराब भी करते हैं जिससे कुछ अतिरिक्त बीमारियों के फैलने का डर रहता है। किसानों को घरेलू स्तर पर परम्परागत तरीकों से भंडारण करना सीखना चाहिए।

सुरक्षित भंडारण के तरीके : सबसे पहले यह जानना आवश्यक है कि यह कीट गोदामों में कैसे पहुंचते हैं। यह कीट खेत-खलिहानों के आस-पास बिखरे कूड़े-कचरे, अनाज ढोने वाली गाड़ियों/बुगियों, गोदामों व कुठलों की दरारों में छिपे रहते हैं। प्रौढ़ उड़कर व सुंडियां रेंग कर गोदामों तक पहुंचते हैं।

गेहूं की नमी मात्रा : सबसे पहले अनाज को भंडारण करने से पहले अच्छी तरह सुखा लें। नमी 12 प्रतिशत से कम हो। इसका पता दानों को दांतों के बीच रखकर तोड़ने से चल जाता है। यदि कट की आवाज़ आती है तो समझें कि अनाज सूखा है। गोदाम नमी रोधक हो, बरसाती मौसम में नमी की मात्रा को नियंत्रित रखें। सुखाने के बाद गर्म अनाज को तुरन्त नहीं रखें ऐसा करने से कीटों की बढ़ोत्तरी का खतरा रहता है।

भंडारण में ऑक्सीजन के प्राप्ति स्रोत : कीटों को श्वास लेने के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है अत: वायुरोधी गोदाम बनायें।

भंडारण में तापक्रम का उतार-चढ़ाव : उच्च तापक्रम का भी कीटों के विकास में महत्वपूर्ण स्थान है। भंडारगृह का तापक्रम अधिक न बढ़े इसका भी विशेष ध्यान रखना चाहिए।

अवशीतन : गर्म क्षेत्रों, महत्वपूर्ण बीजों प्रजनक व आधार बीज तथा जननद्रव्य के लिये अवशीतन की आवश्यकता होती है। अवशीतन का उद्देश्य भंडार कक्ष के भीतर का तापमान बाहर के तापमान से पर्याप्त नीचा रखना है।

निराद्रीकरण : यदि भंडारण की सापेक्षिक आर्द्रता 60 प्रतिशत से अधिक बढ़ती है तो निराद्रीकरण का प्रयोग किया जाता है। निराद्रीकरण से भंडारण के तापमान में वृद्धि हो जाती है। जिसके लिये शीतलन व्यवस्था आवश्यक है।

विशेष ध्यान रखने वाली बातें :

1. मौसम की मार से उत्पादन को बचाने के लिए जितनी जल्दी हो सके गेहूं की कटाई/गहाई करके इसे घर या मण्डी में पहुंचा देना चाहिए।
2. अगर लोहे की टंकियां हैं तो भंडारण उन्हीं में करें।
3. अनाज रखने से पहले गोदाम/कमरे की सफाई अच्छी तरह करें तथा कूड़ा-कचरा बाहर फेंक दें। जहां तक हो सके पूरी सफाई करके गोदाम/कमरे की रासायनिक विधि से पुताई भी कर दें। 50 प्रतिशत मेलाथियान एक लीटर/मेलाथियान 100 लीटर पानी में घोलकर गोदाम में छिड़काव करें ताकि छिपे हुए सारे कीट मर जाएं। गोदाम/कमरे की दीवार व छतों पर पाई जाने वाली दरारों, सुराखों व बिलों को सीमेंट या गारे से भर दें।
4. गोदाम में अगर चूहे का बिल हो तो उसे कांच के टुकड़े मिलाकर सीमेंट या गीली मिट्टी से भर दें।
5. यदि गेहूं को बोरों में भरना हो तो नई बोरियों का प्रयोग करें। यदि बोरियां पुरानी हों तो इन्हें उपचारित करें । मेलाथियान 50 ई.सी. के 1:100 भाग के घोल का छिड़काव (3 लीटर/100 मी की दर से) करें और फिर बोरियों को छांव में सुखा लें।
6. गोदाम में बोरियों का चट्टा उचित ढंग से लगाएं। बोरियों के नीचे लकड़ी की पट्टियां, पॉलीथीन या बांस की चटाई बिछाएं। बोरियों को एक के ऊपर एक न रखें, बोरियों को आड़ी-तिरछी रखें ताकि बीच में हवा का प्रवेश होता रहे।
7. अनाज के टूटे एवं चटके दानों को निकाल दें क्योंकि इस प्रकार के दाने कीटों को पनाह देते हैं अत: अनाज को छान कर व साफ करके ही रखें।
8. भंडारगृह को चूहा रोधी बनाया जाना चाहिए। इसके लिये चूहेदानी, विष चारा, धूमन व रसायन का उपयोग करके आर्थिक हानि से बच सकते हैं।

गेहूं भंडारण में रखने के बाद : अन्न को गोदाम में रखने के बाद समय-समय पर अनाज को देखते रहें कि उनमें कीड़ा वगैरह नहीं लगे यदि अनाज में ढेले बन गये हों तो यह समझा जाता है कि अनाज खराब हो रहा है। ऐसी हालत में तुरन्त सावधानी बरतें। खुले अनाज को जहां तक हो सके हवा लगती रहनी चाहिए। वर्षा काल में अनाज को सुखाने के लिए गोदाम से बाहर नहीं निकालना चाहिए, यदि अनाज में कीड़े लग गए हों तो समय पर नियंत्रण करना चाहिए। इन कीड़ों को मारने के लिए निम्न प्रयोग करें :

- लहसुन का इस्तेमाल गेहूं के सुरक्षित भंडारण में किया जा सकता है। एक क्विंटल के भंडारण क्षमता वाले मर्तबान में एक किलोग्राम परिपक्व लहसुन की आवश्यकता होती है। 200 ग्राम लहसुन को 20 किलोग्राम गेहूं की प्रत्येक परत के नीचे रखने से अनाज सुरक्षित रहेगा। मर्तबान के ढक्कन को अच्छी तरह से बंद रखना चाहिए। यह कम लागत वाली तकनीक है तथा इसे अपनाना भी आसान है।
- नीम के पत्ते, बीज तथा तेल का प्रयोग भंडारण के दौरान लगने वाले अनेक प्रकार के कीड़ों के लिए काफी प्रभावी है। नीम के पत्तों को सुखाकर उसका पाऊडर बनाकर प्रयोग में लाया जाता है। इस पाऊडर का प्रयोग बोरियों/मर्तबानों में किया जाता है। नीम के तेल का प्रयोग अधिक प्रभावकारी पाया गया है क्योंकि इसमें एजाडीरेक्टीम, सेलेनिन एवं मेलाड्रियॉल के सक्रिय तत्व की सांद्रता अधिक होती है। अनाज की मात्रा के हिसाब से तेल की मात्रा का निर्धारण किया जाता है। कुल अनाज की मात्रा का एक प्रतिशत तेल लिया जाता है। बीज के लिए दो प्रतिशत की दर से उपचारित कर भंडारण किया जाता है।

एल्यूमिनियम फॉस्फाईड (सेल्फॉस/क्वीकफॉस/फॉस्फ्यूम) : यह दवा टिकिया व पाऊच के रुप में मिलती है। यह बाज़ार में कास्टाक्विसन फास्फोरस एवं सेल्फॉस आदि नाम से मिलती है। दानों को कीडों से बचाने के लिए गेहूं में एल्यूमिनियम फॉस्फाईड की तीन ग्राम वाली 2-3 टिकिया प्रति 10 क्विंटल की दर से प्रयोग करें। इस दवा को रखने के बाद भंडारण वाली कोठियों, कमरों आदि को एक सप्ताह तक बंद रखें। जब अनाज का प्रयोग करना हो तो पहले उसे कुछ देर हवा में रखें यदि दानों में फिर भी कीड़ों का प्रकोप दिखाई दे तो सेल्फॉस की 2-3 गोली प्रति 10 क्विंटल दोबारा प्रयोग करें। यदि गेहूं के दानों में नमी 10 प्रतिशत से अधिक हो तो धूमीकरण न करें। धूमीकरण करने से पहले गोदाम जांच पड़ताल करें कि कहीं हवा तो लीक नहीं हो रही है। इन्हें अच्छी तरह टाईट करके धूमीकरण करें व एक सप्ताह के लिये गोदाम बन्द रखें ताकि अन्दर की हवा बाहर व बाहर की हवा अन्दर ना जा पाये।

सावधानियां : एल्यूमिनियम फॉस्फाईड का प्रयोग करने वाले को यदि

(शेष पृष्ठ 5 पर)

कोरोना वायरस संक्रमण से बचाव हेतु : कृषि कार्य के समय सावधानियां

✍ **अशोक कुमार, सूबे सिंह एवं राजेश कुमार**
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

दुनियाभर में कोरोना वायरस के कारण होने वाली बीमारी कोरोना (कोविड-19) का कहर जारी है। लाखों लोग इससे संक्रमित हैं और हज़ारों लोगों की मृत्यु हो चुकी है। भारत में भी कोरोना वायरस के मामले लगातार सामने आ रहे हैं। बुखार, जुकाम, सांस लेने में तकलीफ, नाक बहना और गले में खराश इसके लक्षण हैं। यह वायरस एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलता है इसलिए इसे लेकर बहुत सावधानियां बरतने की आवश्यकता है। कुछ मामलों में कोरोना वायरस घातक भी हो सकता है मुख्यत: अधिक आयु के लोग एवं जिन्हें पहले से ही अस्थमा, मधुमेह ओर दिल की बीमारी है, क्योंकि इसका इलाज या टीका अब तक खोजा नहीं जा सका है, ऐसे में केवल सावधानी रखकर ही इससे बचा जा सकता है। भारत में कोरोना के कारण लॉकडाऊन ने सबसे बुरा प्रभाव खेती पर डाला है। जहां देशवासी कोरोना से खुद को बचाने के बारे में सोच रहे हैं, वहीं किसान अपनी फसल और देशवासियों के आने वाले दिनों में खाने के बारे में सोच रहे हैं। इस महामारी से बचने के लिए किसान निम्न उपाय/सुझावों को अपनाकर कोरोना वायरस से बचाव कर सकते हैं :

- खांसी, जुकाम, बुखार आदि लक्षण वाले व्यक्ति को कृषि कार्य में न लगाएं।
- जहां तक संभव हो परिचित व्यक्तियों को ही कार्य में लगाएं और आवश्यक पूछताछ के बाद ही लगाएं।
- कृषि कार्य करते समय मुंह पर साधारण कपड़ा अथवा मास्क अवश्य पहनें।
- कृषि कार्य में शारीरिक दूरी का ध्यान रखें। कार्य के समय, खाना खाते अथवा खेत में विश्राम करते समय कम से कम दो गज़ की दूरी बनाए रखें।
- खाने-पीने के बर्तन इत्यादि अलग-अलग रखें। बर्तनों को उपयोग से पहले एवं बाद में साबुन के पानी से अच्छी तरह धोएं।
- खेत में पर्याप्त मात्रा में पीने का पानी एवं साबुन की व्यवस्था रखें।
- हस्त चालित उपकरणों को कीटाणु रहित कर ही प्रयोग करें।
- यदि आपका ट्रैक्टर ड्राइवर चला रहा है, और फिर बाद में आप चलाएं तो अपने हाथों को मुंह और आंखों से लगाने से बचें और चलाने के तुरंत बाद साबुन से हाथ धोएं।
- फल और सब्जियों की कटाई के समय और कटाई के उपरांत उपयोग में लाए गए थैले/झोले आदि का आदान-प्रदान न करें व उनको उठाने से पहले एवं बाद में अपने हाथ-पैर सावधानीपूर्वक धोएं।
- कृषि कार्य में प्रयुक्त कपड़ों को दूसरे दिन न पहनें एवं अच्छी तरह से साबुन इत्यादि प्रयोग कर धूप में सुखाकर ही प्रयोग करें।
- किसान दिन में अधिक से अधिक गर्म पानी पिएं, गर्म नमकीन पानी के गरारे करें और खेत में काम के बाद साबुन लगाकर पानी से नहाएं।
- कोरोना वायरस से बचने के लिए बाहर से आने वाले व्यक्ति से हाथ न मिलाएं, नमस्ते ही करें।
- पशुओं को नियंत्रित रखने के साधन (हैंडलर) बार-बार बदलें और पशु को नियंत्रित रखने/बांधने की रस्सियों/चेन/सांकल/बेल को उपयोग के बाद हर बार साबुन के घोल से कीटाणुरहित करें।

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार ने भी कोरोना से बचाव हेतु दिशा निर्देश सुझाए हैं। किसान अपने नज़दीकी कृषि विज्ञान केन्द्र से सम्पर्क करके अथवा विश्वविद्यालय की नि:शुल्क फोन सेवा (1800-180-3001, 1800-180-3111 एवं 1800-180-4002) पर फोन कर उचित परामर्श ले सकते हैं। ●

ग्रीष्मकालीन मूंग : मुख्य कीट एवं रोकथाम

✍ **दिलबाग सिंह, जोगिंदर सिंह[1] एवं प्रेमदीप[2]**
कीट विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मूंग हमारे देश की सबसे महत्वपूर्ण दलहनी फसल है, जिसकी काश्त खरीफ मौसम के अलावा ग्रीष्म ऋतु में सिंचित क्षेत्रों में की जाती है। इसकी पैदावार उपजाऊ क्षमता से बहुत कम होने के पीछे विभिन्न कारक ज़िम्मेदार हैं। उनमें से प्रमुख कारण फसल में कीटों का प्रकोप है। इसके अलावा अन्य फसल न होने की वजह से दूसरी फसलों के कीट भी कई बार नुकसान पहुंचाते हैं। हानिकारक कीटों की रोकथाम करके ग्रीष्मकालीन ऋतु में भी मूंग की अधिक पैदावार ली जा सकती है।

हरा तेला : इस कीट के शिशु व प्रौढ़ छोटे-2 पीलापन लिए हरे रंग के होते हैं। ये बडे चंचल व फुर्तीले होते हैं। थोडा छेड़ने पर बच्चे तिरछे चलते हैं तथा प्रौढ़ उड़ जाते हैं। यह कीट पत्तियों की निचली सतह से रस चुराते हैं व मुंह से ज़हरीला पदार्थ छोडकर भी नुकसान पहुंचाते हैं। परिणामस्वरूप पत्तों के किनारे नीचे की ओर मुड़ जाते हैं। अत्यधिक प्रकोप होने पर पत्ते पीले व जंगनुमा लाल हो जाते है व सूख कर गिर जाते हैं।

चुरड़ा/थ्रिप्स : इस कीट के प्रौढ़ व बच्चे बहुत छोटे लगभग एक मि.मी. लम्बे, चमकीले शरीर वाले, गहरे भूरे रंग के होते हैं। थ्रिप्स फूल में पाये जाते हैं, फुल को कुरेदकर निकलने वाले रस को पीते हैं, जिससे फूल खिलने से पहले ही गिर जाते हैं। यदि ऐसा कोई फूल खिल भी जाता है तो फूली कुरूप व दाने सिकुडं हुए व छोटे बनते हैं। बढ़वार रुकने से पौधा झाड़ीनुमा व गहरे रंग का नज़र आता है।

सफेदमक्खी: इस कीट के प्रौढ़ मच्छर के आकार के तथा सफेद पंख वाले होते हैं। यह तीन प्रकार से पौधों को नुकसान पहुंचाते हैं। पहले इसके शिशु व प्रौढ़ पत्तों का रस चूसकर फसलों को कमजोर कर देते हैं, जिससे बढवार रुक जाती है। दूसरे इसके द्वारा छोड़े गए चिपचिपे पदार्थ से पत्तों की ऊपरी सतह पर काली फफूँद लग जाती है, जिससे पौधों की भोजन बनाने की क्षमता पर प्रभाव पडता है और परिणाम स्वरूप उत्पादन घट जाता है। तीसरा यह मक्खी एक पौधे से दूसरे पौधे तक विषाणुरोग (पीलामौजेक) फैलाती है। फलस्वरूप पौधे की फलियाँ बहुत कम टेढी-मेढी और पीले रंग की लगती है।

पत्ता छेदक (फलीबीटल) : यह कीट अप्रैल से सितम्बर तक मूँग को नुकसान पहुंचाता है। इसका प्रकोप छोटे पौधों पर अधिक होता है। यह पत्तों को काटकर छोटे-2 सुराख कर देता है। जिससे पौधों की भोजन बनाने की क्षमता कम हो जाती है। अधिक प्रकोप से यह पत्तों को छलनी-2 कर देता है। यह कीट सुबह व सांयकाल अधिक सक्रिय रहता है। दोपहर के समय तापमान बढने पर यह भूमि में छिप जाता है।

एकीकृत कीट रोकथाम

1. संतुलित मात्रा में खाद व पानी दें तथा खरपतवारो को नष्ट कर दें।
2. सूण्डियों के प्राकृतिक शत्रु जैसे मैना, कौवा, बगुले आदि को आश्रय देने के लिए खेत में टी आकार की बांस या लकडी की डण्डियां (8 से 10) प्रति एकड़ लगाने से कीटों का प्रकोप कम करने में मदद मिलती है।
3. चुरड़ा, सफेद मक्खी व हरा तेला की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 250 मि.ली. डायमेथोएट (रोगोर) 30 ई.सी. 250 मि.ली. ऑक्सीडेमेटान मिथाइल (मैटासिस्टॉक्स) 25 ई.सी. या

(शेष पृष्ठ 8 पर)

[1]विस्तार शिक्षा विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।
[2]मौसम विज्ञान विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

कपास फसल : रोग एवं उनकी रोकथाम

✍ एन.के. यादव, चित्रलेखा एवं नवीश कुमार कम्बोज
कपास अनुसंधान केन्द्र, सिरसा
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा में खरीफ फसलों में कपास का महत्वपूर्ण स्थान है। सफेद सोना के नाम से प्रसिद्ध यह फसल हरियाणा में लगभग 6.0 लाख हैक्टेयर में उगाई जाती है। कपास की पैदावार को प्रभावित करने वाले अनेक कारण हैं, जिनमें कीट तथा रोग प्रमुख हैं। कपास में लगने वाले मुख्य रोगों के लक्षण एवं उनकी रोकथाम निम्न प्रकार से करें।

कपास फसल के मुख्य रोग व रोकथाम

पौध रोग : यह रोग भूमि में उपस्थित फफूंद व जीवाणु द्वारा अधिक तापमान होने पर फैलता है। रोगग्रसित तनों पर भूमि की सतह के पास लाल-भूरे धब्बे बन जाते हैं जिससे पौधा कमज़ोर व सूखकर नीचे गिर जाता है।

रोकथाम : ज़मीन का तापमान कम होने पर अगेती बिजाई न करें क्योंकि बीज ज़मीन में अधिक दिन तक रहता है और जमाव देर से होने के कारण ज़मीन में रहने वाले सूक्ष्म जीव पौध को नष्ट कर देते हैं।

पत्ती मरोड़ रोग : पत्ता मरोड़ रोग सर्वप्रथम राजस्थान के श्रीगंगानगर ज़िले में 1993 में देखा गया और अब यह उत्तरी भारत में कपास का प्रमुख रोग है। यह रोग जैमिनी वाइरस द्वारा होता है जिसे फैलाने में सफेद मक्खी सहायता करती है। यह रोग सबसे पहले ऊपर की कोमल पत्तियों पर दिखाई देता है। पत्तों की नसें मोटी हो जाती हैं, पत्ता अधिक हरा दिखाई देता है। पत्तियां ऊपर या नीचे की तरफ मुड़कर कप (प्याला) जैसी आकृति की हो जाती हैं। अधिक प्रकोप की अवस्था में पत्तियों की निचली सतह की नसों पर पत्ती आकार की बढ़वार दिखाई देती है। यदि कपास के पौधों में छोटी अवस्था में यह रोग लग जाए तो प्रभावित पौधे छोटे रह जाते हैं। फूल, कली व टिण्डे नहीं लगते, बढ़वार एकदम रुक जाती है और उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

रोकथाम : अधिक प्रकोप वाले क्षेत्रों में देसी कपास अथवा रोग रोधी किस्मों को बढ़ावा दें। कपास के खेतों को खरपतवार मुक्त रखें व भिण्डी की फसल न उगायें। सफेद मक्खी की रोकथाम हेतु 40 मि.ली. इमिडाक्लोपरिड (कान्फीडोर)17.8 ई.सी. या 40 ग्रा. थायोमिथाकसाम (एकटारा) 25 घु. दा.150-200 ली./एकड़ पानी में घोल बनाकर फसल पर आवश्यकतानुसार छिड़काव करें।

कोणदार धब्बा रोग : इस रोग के लक्षण कोणदार धब्बों के रूप में प्राय: सभी भागों पर देखे जा सकते हैं जो कि आरम्भिक अवस्था में जलसिक्त (पानीदार) गहरे-भूरे रंग के होते हैं तथा बाद में लाल या जामुनी रंग में बदल जाते हैं। रोगी पौधों की शिराएं बाद में काली हो जाने से पत्ते गिरने लगते हैं।

रोकथाम : स्ट्रैप्टोसाइक्लिन 6-8 ग्रा. व कॉपरआक्सीक्लोराइड 600-800 ग्रा./प्रति 200 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ 15-20 दिन के अन्तराल पर आवश्यकतानुसार उपयोग करें।

माइरोथिसियम धब्बा रोग : यह पत्तों का रोग छोटे-छोटे गोल धब्बों, जिनका रंग लाल बैंगनी छलक लिये हल्के-भूरे रंग से पहचाना जा सकता है रोग अधिक बढ़ जाने पर धब्बे आकार में बड़े होकर मिल जाते हैं व बीच में छेद भी बन जाते हैं तथा यह लक्षण फल/टिण्डों पर भी देखे जा सकते हैं।

रोकथाम : इन रोगों के उपचार हेतु रोगरोधी किस्मों का बीजोपचार (बाविस्टिन 2 ग्राम/कि.ग्रा.) कर उपयोग करें। समयानुसार कॉपर ऑक्सीक्लोराइड या बाविस्टिन (2 ग्राम प्रति लीटर पानी) का घोल बनाकर छिड़काव करें।

एन्थ्रेक्नोज़ : इस रोग में जलसिक्त लाल रंग के धब्बे जो कि अन्दर की ओर धंसे रहते हैं प्राय: पौधे के हर भाग पर बन जाते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में नारंगी रंग की फफूंद इन पर नज़र आने लगती है जो कि टिण्डों पर भी अन्दर तक फैल जाती है।

रोकथाम : माइरोथिसियम धब्बा रोग में प्रयुक्त रोकथाम उपाय अपनाएं।

पैरा विल्ट या नया विल्ट : यह बी.टी. हाईब्रिड में प्रमुख कार्यिकी समस्या है। इसमें कोई रोगाणु शामिल नहीं होता है। पौधे के पत्ते अचानक मुरझा जाते हैं और पौधे शीघ्र मर जाते हैं। लेकिन जड़ें सामान्य रहती हैं। अधिक वानस्पतिक वृद्धि तथा अधिक टिण्डे धारण के कारण पौधों को अधिक मात्रा में पोषक तत्वों की आवश्कता होती है। लेकिन यह पोषक तत्व ज़मीन से नहीं मिलने के कारण पौधे अचानक सूख जाते हैं जिसे स्थानीय भाषा में सूटा मारना भी कहते हैं। रेतीली ज़मीनों में पोषक तत्वों की कमी के कारण यह समस्या अधिक होती है।

रोकथाम : फसल में आवश्यक पोषक तत्वों का प्रबन्धन करें। पैरा विल्ट के लक्षण दिखाई देते ही कोबाल्ट क्लोराईड 1 ग्रा. प्रति 100 लीटर (10पी.पी.एम.) पानी में घोल बनाकार छिड़काव करें।

टिण्डा गलन : यह रोग जीवाणु और फफूंद द्वारा होता है। प्रकोपित पौधों के टिण्डों पर जलसिक्त धब्बे जो कि अंदर की ओर धंसे हुए रहते हैं तथा यह बाद में काले रंग में बदल जाते हैं। प्रकोपित फलों से लाल-पीले व गंदे रेशे प्राप्त होते हैं तथा अधिकतर टिण्डे गल कर नीचे गिर जाते हैं।

रोकथाम : इस रोग की रोकथाम हेतु कॉपर ऑक्सीक्लोराइड या बाविस्टिन (2ग्राम प्रति लीटर पानी) का घोल बनाकर छिड़काव करें। इन दवाइयों को पत्तों पर अच्छी तरह चिपकाने के लिए 10 ग्रा. सैल्वेट 99 या 50 मि.ली.ट्राइटान प्रति एकड मिला लें।

जड़ गलन : यह रोग सारे खेत में न होकर कहीं-कहीं आता है जिससे ऊपरी फुटाव मुरझाने लगता है तथा 24 घण्टे में पौधे पूर्ण रूप से मुरझा कर मर जाते हैं। प्रकोपित पौधे आसानी से उखाड़े जा सकते हैं तथा इनकी जड़ चिपचिपी व गली होती है तथा छाल भी उतरने लगती है।

रोकथाम : बीज उपचार के लिए बाविस्टिन 2 ग्राम/कि.ग्रा. की दर से उपयोग करें। बाविस्टिन दवा का घोल 2 ग्रा./ली. बनाकर रोगग्रस्त क्षेत्र को अच्छी प्रकार उपचारित (ड्रैचिंग) करें।

उखेडा या विल्ट : यह रोग प्राय: देसी कपास में अधिक देखा जाता है। प्रकोपित पौधों के पत्ते किनारों से पीले हो जाते हैं तथा रोग बढ़ने पर सारा पत्ता पीला होकर गिर जाता है। प्रकोपित पौधे के तने का निरीक्षण करने पर भूरे रंग की सुरती धारी देखी जा सकती है। जिस कारण पौधों की भोजन प्रक्रिया बाधित होने से नीचे की ओर से सूखना शुरू हो जाते हैं।

रोकथाम : इस रोग से बचाव हेतु बीज उपचार के लिए बाविस्टिन 2 ग्राम/कि. ग्रा. की दर से उपयोग करें। ●

(पृष्ठ 3 का शेष)

ज़हर के लक्षण दिखाई दें जैसे जी मिचलाना, चक्कर आना, सिर दर्द आदि तो इससे प्रभावित व्यक्ति को खुली हवा में लिटा देना चाहिए। यदि मरीज़ की हालत अधिक खराब लगे तो तुरन्त डाक्टर की सलाह लेनी चाहिए। दवा का प्रयोग करने के बाद साबुन से हाथ धोने चाहिएं।

निष्कर्ष : चूंकि भारतवर्ष में लगातार गेहूं की पैदावार बढ़ रही है और उचित भंडारण नहीं होने के कारण किसान का गेहूं जल्दी खराब हो जाता है। गेहूं का सुरक्षित भंडारण राष्ट्रीय जिम्मेदारी है क्योंकि इसपर देश की खाद्य सुरक्षा निर्भर करती है। अत: प्रत्येक स्तर पर सुरक्षित भंडारण की व्यवस्था व प्रबंधन से जुड़े पहलुओं पर विशेष रुप से ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि अनाज का हर एक दाना उपयोग में लाया जा सके। उपर्युक्त दिये गये सुरक्षित भंडारण उपायों से अनाज को लम्बे समय तक भंडारण कीटों, कवकों एवं सूक्ष्म जीवाणुओं से बचाया जा सकता है। ●

खरीफ मूंग : पैदावार कैसे बढ़ाएं

✍ **सत्यजीत, एस.पी. यादव एवं बिक्रम सिंह**
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मूंग एक बहुगुण सम्पन्न खरीफ मौसम की शुष्क तथा अर्धशुष्क क्षेत्रों के लिए महत्वपूर्ण दलहनी फसल है। भोजन के आवश्यक पोषक तत्वों में प्रोटीन की कमी को दूर करने के लिए मूंग एक सबसे सस्ता साधन है। इसके दाने में 24-26 प्रतिशत तक प्रोटीन पायी जाती है। हरियाणा में इस फसल की खेती बहुत ही कम क्षेत्र में की जाती है। इस फसल की औसत उपज बहुत कम है, क्योंकि यह फसल कम उपजाऊ ज़मीन में बोई जाती रही है। मूंग में खरीफ के मौसम में पीला मोजैक रोग का अधिक प्रकोप होने के कारण इसकी औसत उपज बहुत कम प्राप्त होती है। अत: यह आवश्यक है कि इस फसल की खेती वर्तमान किस्मों के साथ वैज्ञानिक तरीके से की जाये ताकि इस फसल की उपज बढ़ाई जा सके।

उन्नतशील किस्में : उन्नत किस्म के बीज का चयन इस फसल की उपज का मुख्य आधार है। इसकी उन्नत किस्में सत्या, बसन्ती, एम एच 421 व एम एच 318 हैं। इन किस्मों में से बसन्ती, एम एच 421 व एम एच 318 को ग्रीष्म व खरीफ दोनों में उगाया जा सकता है।

भूमि व खेत की तैयारी : मूंग की फसल अति क्षारीय, लवणीय एवं अम्लीय मृदा को छोड़कर सभी प्रकार की मिट्टी में उगाई जा सकती है। भुर-भुरी दोमट से लेकर बलुई दोमट मिट्टी जिसमें जल निकास अच्छा हो तथा मृदा का पी. एच. मान 6.0-7.5 हो अधिक उपयुक्त पाई गई है। ग्रीष्मकालीन जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करें ताकि भूमि में रहने वाले हानिकारक कीट, जीवाणु एवं अन्य जन्तुओं की रोकथाम की जा सके। वर्षा के प्रारम्भ में खेत की दोहरी जुताई करके सुहागा लगाकर अच्छी तरह तैयार करें ताकि खेत में खरपतवार व ढेले न रहें।

बुवाई का समय : मानसून की वर्षा के साथ ही जुलाई का प्रथम पखवाड़ा बिजाई के लिए उपयुक्त है। यद्यपि जुलाई के तीसरे सप्ताह तक भी इसकी बिजाई की जा सकती है। जुलाई से पहले की बिजाई में इसकी बढ़वार अधिक हो जाती है, फलस्वरूप पैदावार कम हो जाती है परन्तु अधिक देरी से बिजाई करने पर पीला मोजैक वायरस का प्रकोप बढ़ जाता है।

बीज उपचार : अन्य दलहनी फसलों की भांति मूंग के बीज को राइजोबियम कल्चर से उपचारित करना चाहिए। राइजोबियम कल्चर से बीज को उपचारित करना अच्छी उपज प्राप्त करने में सहायक होता है। एक खाली बाल्टी में 2 कप पानी में 50 ग्राम गुड़ का घोल बनाएं। गुड़ के घोल को एक एकड़ के बीज पर डालें और ऊपर से राइजोबियम का टीका छिड़कें, बीजों को अच्छी तरह मिलाकर बिजाई से पहले छाया में सुखा लें। फास्फोरस सालूब्लाइजिंग बैक्टीरिया (पी. एस. बी.) कल्चर से बीजोपचार करने से फसल के लिए भूमि में उपलब्ध फास्फोरस की मात्रा बढ़ जाती है। राइजोबियम कल्चर की भांति पी. एस. बी. कल्चर से भी बीज को उपचारित किया जा सकता है।

बीज की मात्रा बुवाई व छंटाई : एक एकड़ के लिए 6-8 किलो ग्राम बीज पर्याप्त रहता है। इसकी बिजाई 30 व 45 सैं.मी. (क्रमश: सिंचित व असिंचित के लिए) चौड़ी लाइनों में 4-5 सैं.मी. गहराई पर करें। यदि खेत में पौधे अधिक हों तो पौधे से पौधे का अन्तर 10 सैं. मी. रखकर छंटाई करें।

खाद : बिजाई के समय 16 किलोग्राम फास्फोरस (35 किलोग्राम डी.ए.पी. या 100 किलोग्राम सिंगल सुपरफास्फेट) तथा 8 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (17.5 कि.ग्रा. यूरिया) प्रति एकड़ के हिसाब से ड्रिल करें। निम्न व मध्यम पोटाश स्तर वाली ज़मीन में 8 कि. ग्रा. पोटाश (14 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश 60 प्रतिशत) प्रति एकड़ की दर से खरीफ मूंग में बिजाई के समय डालें।

खरपतवार नियन्त्रण : खरपतवार फसल के पोषक तत्व, नमी व प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं जिससे पैदावार पर विपरीत असर पड़ता है। खरीफ व बारानी क्षेत्र की फसल होने के कारण इसमें खरपतवार का प्रकोप प्रारम्भ से ही अधिक रहता है। इसलिए बारानी क्षेत्रों में निराई-गुड़ाई द्वारा खरपतवारों के नियन्त्रण के लिए एक गुड़ाई बिजाई के 20-25 दिन बाद अवश्य करें। आवश्यकता पड़ने पर दूसरी निराई 35-40 दिन की अवस्था पर करें।

हानिकारक कीड़े : इस फसल को बालों वाली सूण्डी, पत्ता छेदक (फली बीटल) हरा तेला, व सफेद मक्खी हानि पहुंचाते हैं। बालों वाली सूण्डी व फली बीटल की रोकथाम के लिए खरीफ फसलों की कटाई के बाद खेतों की गहरी जुताई करें जिससे बालों वाली सूण्डियों के प्यूपे बाहर आ जाते हैं और पक्षियों द्वारा व अन्य कारणों से नष्ट हो जाते हैं। खेतों के आसपास खरपतवारों को न रहने दें क्योंकि ये कीड़े उन पर अण्डे देते हैं।

बड़ी सूण्डियों की रोकथाम के लिए 250 मि.ली. मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. या 500 मि.ली. क्विनलफॉस 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। हरा तेला व सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 250 मि.ली. डाइमेथोएट (रोगोर) 30 ई.सी. या 250 मि.ली. ऑक्सीडेमेटान मिथाइल (मैटासिस्टॉक्स) 25 ई.सी. का 250 लीटर पानी में मिलाकर 2-3 हफ्ते के अन्तर पर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

मुख्य बीमारियां

पीला मोजैक : सफेद मक्खी इस रोग के वाहक के रूप में इसके वायरस को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लेकर जाती है। शुरू में यह नई पत्तियों पर दिखाई देती है। सफेद मक्खी की संख्या में बढ़ोत्तरी, इस रोग को फैलाने में सहायक होती है। इसके नियन्त्रण के लिए फसल उगाने के 20-25 दिनों बाद 250 मि.ली. डाइमेथोएट (रोगोर) 30 ई.सी. या 250 मि.ली. ऑक्सीडेमेटान मिथाइल (मैटासिस्टॉक्स) 25 ई.सी. या 250 मि.ली. फार्मोथियान (एन्थियों) 25 ई.सी. का 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 15 दिनों के अन्तराल में दो बार छिड़काव करें। रोगी पौधे दिखाई देने पर उन रोगी पौधों को उखाड़कर नष्ट कर दें ताकि यह रोग आगे न फैलने पाए।

जड़ गलन : इस बीमारी के कारण पौधे पीले पड़ जाते हैं और छोटे हो जाते हैं। जड़ें गल जाती हैं तथा पौधे नष्ट हो जाते हैं। रोग के नियन्त्रण के लिए बीज को 2 ग्राम कार्बेन्डाज़िम (बाविस्टिन) या 4 ग्राम थाईरम द्वारा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।

कटाई व गहाई : जब फसल की पत्तियां पीली पड़ जाएं और फलियों का रंग गहरा भूरा हो जाये तो फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। आमतौर पर यह अवस्था बिजाई के 65-70 दिन बाद आ जाती है। जब फलियां 90 प्रतिशत पक जाएं तो उनको तुड़वा लेना चाहिए। कटाई के बाद फसल को 3-5 दिन के लिए धूप में सुखाएं तथा फसल के पूर्ण सूखने पर ही गहाई करें। अच्छी प्रकार सुखाने के बाद दानों को नमी रहित स्थान पर भंडारण करें।

पैदावार बढ़ाने हेतु महत्वपूर्ण सुझाव

- ❑ हमेशा उन्नत किस्म के प्रमाणित बीज का ही चयन करें एवं उन्हें उचित मात्रा में प्रयोग करें।
- ❑ बिजाई के समय खेत में नमी उचित मात्रा में होनी चाहिए।
- ❑ बीज को सिफारिशशुदा कवकनाशक, राईजोबियम तथा पी.एस.बी. कल्चर से उपचारित करने के बाद ही बिजाई करें।
- ❑ मिट्टी की जांच के आधार पर उर्वरकों की सही मात्रा का प्रयोग करें।
- ❑ खरपतवार नियंत्रण समय पर करें।
- ❑ फसल की लगातार निगरानी रखनी चाहिए व कीट पतंगों से फसल को बचाने के उपाय समय से अपनाने चाहिएं। ●

बैंगन की भरपूर पैदावार – कीटों व बीमारियों के नियन्त्रण से

✍ **जगत सिंह, धर्मबीर दूहन एवं विजयपाल पंघाल**
सब्जी विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा प्रदेश में उगाई जाने वाली सब्जी फसलों में बैंगन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसकी सालभर में तीन फसलें ली जा सकती हैं अर्थात ग्रीष्म, वर्षा तथा शरद ऋतु में इसकी फसल ली जा सकती है। तीनों मौसम में इस फसल में लगने वाले विभिन्न प्रकार के कीट व बीमारियों द्वारा फसल उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है जिससे किसान को आर्थिक नुकसान होता है। बैंगन में लगने वाले कीट व बीमारियों का नियन्त्रण निम्न प्रकार से है :

कीट व उनका नियन्त्रण :

तना एवं फल छेदक : इस कीट की सूण्डियां गुलाबी रंग की होती हैं जो लगभग बालरहित होती हैं। नवजात सूण्डियां नई शाखाओं में छिद्र करके प्रवेश कर जाती हैं जिसके कारण शाखाएं मुरझा जाती हैं और पौधों की बढ़वार रुक जाती है। जब फल लगते हैं तो सूण्डियां फलों में घुसकर उन्हें हानि पहुंचाती हैं। फलों में छेद सूण्डियों के बारह आाने के बाद ही दिखाई पड़ते हैं। इस कीट द्वारा 20-25 प्रतिशत तक नुकसान होता है।

नियंत्रण : फूल आने से पहले जैसे ही इस कीट का प्रकोप शाखाओं पर दिखाई पड़े, 75 ग्राम स्पाईनोसैड 45 एस.सी. को 80 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 15 दिन के अन्तर पर तीन छिड़काव करें। बीच में फसल के लिये प्रोक्लेम 5 एस.जी. 56 ग्राम प्रति एकड़ के हिसाब से तीन छिड़काव करें। इसके अतिरिक्त कीट ग्रसित शाखाओं व फलों को तोड़कर मिट्टी में गहरा दबा दें या जला दें। छिड़काव करने से पहले तैयार फलों को तोड़ लें।

हरा तेला : इस कीट के हरे रंग के शिशु व प्रौढ़ पत्तियों की निचली सतह से रस चूसते हैं जिससे पत्तियां मुड़ जाती हैं तथा बाद में पीली होकर किनारों से सूख जाती हैं।

नियंत्रण : जैसे ही रस चूसने वाले कीट फसल पर दिखाई दें, 300-400 मि.ली. मैलाथियॉन 50 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 15 दिन के अन्तर पर छिड़कें। फल शुरू होने पर बारी-बारी से सिन्थेटिक-पाइरेथ्राइड (80 मि.ली. फैनवैलरेट 20 ई.सी. या 70 मि.ली. साइप्रमेथ्रिन 25 ई.सी. या 200 मि.ली. डेल्टामैथ्रीन 2.8 ई.सी.) और दूसरे कीटनाशक (500 ग्राम कार्बेरिल 50 डब्ल्यू.पी. रोपाई के 35-40 दिन बाद 200 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। सिन्थेटिक पाइरेथ्राइड का छिड़काव 15 दिन के अन्तर पर दोहरायें।

सफेद मक्खी : यह सफेद पंखों वाला छोटा-सा कीट है। इसके शिशु व प्रौढ़ पत्तों की निचली सतह से रस चूसते हैं जिससे पत्ते पीले पड़ जाते हैं। यह विषाणु रोग भी फैलाता है।

नियत्रंण : इस कीट के नियंत्रण के लिये 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करें।

हड्डा भूंडी : यह भूंडी अधीवृत्त आकार में तांबे जैसे रंग की होती है। इसकी सूण्डियां (लटें) पीले रंग की, मज़बूत और कांटेदार होती हैं। सूण्डी व प्रौढ़ पत्तियों से हरे पदार्थ को खाते हैं।

नियत्रंण : जैसा सफेद मक्खी के लिये बताया गया है।

लाल अष्टपदी (माईट) : पत्तों की निचली सतह पर पीले व लाल रंग के शिशु व प्रौढ़ जाला बनाकर रहते हैं। इनके द्वारा रस चूसने से पत्तों पर छोटे-छोटे सफेद धब्बे बन जाते हैं।

नियंत्रण : 300 मि.ली. प्रैम्पर 20 ई.सी. को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें तथा 10-12 दिन के अन्तर पर 2-3 बार फिर से छिड़काव करें।

जड़ सूत्रकृमि : इनका जड़ों में आक्रमण होने से पौधों की वृद्धि एवं विकास रुक जाता है। पत्ते पीले रंग के हो जाते हैं। जड़ों में गांठें बन जाती हैं।

नियंत्रण : एक ही खेत में टमाटर, बैंगन, शिमला मिर्च व आलू की एक फसल लेने के बाद दूसरी फसल न लें। हमेशा सूत्रकृमि रहित पौध ही लगाएं। प्रभावित पौधों को उखाड़कर जला देना चाहिए।

बीमारियां व उनका नियन्त्रण :

फल गलन : यह रोग पत्तों से आरम्भ होकर फलों पर पहुंचता है। फलों का रंग भूरा होना शुरू हो जाता है तथा उस स्थान पर फल गलने लगते हैं।

नियन्त्रण : स्वस्थ बीज इस्तेमाल करें तथा बिजाई से पहले बीज का उपचार 2.5 ग्राम थाइरम या कैप्टान प्रति किलोग्राम बीज की दर से करें। फल लगने के बाद जिनेब अथवा इण्डोफिल एम-45, 400 ग्राम दवा का 200 लीटर पानी में प्रति एकड़ की दर से 10-12 दिन के अन्तर पर 2-3 बार छिड़काव करें।

छोटी पत्ती व मौजेक रोग : इस रोग से पत्ते छोटे और पीले हो जाते हैं और पौधे बौने रह जाते हैं। फल बहुत कम लगता है।

नियन्त्रण : रोग को फैलने से रोकने के लिये प्रारम्भिक अवस्था में रोगी पौधे निकालकर नष्ट कर दें। पौध रोपण से पहले पौधे की जड़ों को आधे घण्टे तक टेट्रासाइक्लिन के घोल में (0.5 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में) डुबोएं। नर्सरी तथा खेत में तेला तथा सफेद मक्खी से बचाव के लिये बताई गई कीटनाशक दवाइयों का समय-समय पर इस्तेमाल करें। ●

(पृष्ठ 1 का शेष)

- मई के अंत व जून में चूरड़ा के लिए 250-350 मि.ली. ड़ाइमेथोएट (रोगोर) 30 ई.सी. या 300-400 मि.ली. आक्सीडीमेटान मिथाइल (मैटासिस्टॉक्स) 25 ई.सी. को 120-150 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।
- जुलाई-अगस्त में हरा तेला के लिए या 40 मि.ली. ईमीड़ाक्लोपरिड़ (कोन्फीड़ोर) 200 एस.एल. या 40 ग्राम थायामीथोक्साम (एकतारा) 25 घु. दाने को 120-150 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।
- यदि अगस्त-सितम्बर माह में सफेद मक्खी का आक्रमण हो जाए तो, सफेद मक्खी के आर्थिक कगार पर पहुंचने पर 300 मि.ली. डाइमेथोएट 30 ई.सी. या मैटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. व एक लीटर नीम आधारित कीटनाशक को 250 लीटर पानी में अथवा सपाईरोमेसिफेन 22-9 एस.सी. (औबेरोन 240 एस.सी.) 240 मि.ली. को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से बारी-बारी से छिड़काव करें।
- मीली बग के लिए 3 मि.ली. प्रोफेनोफॉस 50 ई.सी. या 1-5 ग्राम थायोडिकार्ब 75 डब्ल्यू पी या 4 मि.ली. क्विनलफॉस 25 ई.सी. प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
- एक ही कीटनाशक या एक वर्ग के कीटनाशकों का प्रयोग बार-बार न करें।
- पायरिथरोइड कीटनाशकों का प्रयोग न करें। ●

प्लास्टिक मल्च का बागवानी में उपयोग

✍ संजय कुमार, रीतिका एवं कीर्ति सिंह[1]
उद्यान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

विश्व में भारत का फल उत्पादन में द्वितीय स्थान है। इसके बावजूद भारत की फलों के विश्व व्यापार में भागीदारी करीब 2 प्रतिशत है। इसका मुख्य कारण हमारे फलों की गुणवत्ता कम होना है, जो कि कई कारणों से प्रभावित होती है। जिसमें मुख्य है – बाग का प्रबंधन एवं सस्य क्रियाएं।

सस्य क्रियायों के अंतर्गत एक महत्वपूर्ण क्रिया मल्चिंग है। मल्चिंग का अर्थ है कि जब पौधे के चारों ओर किसी पदार्थ को इस प्रकार बिछाया जाता है जिससे पौधे के पास की भूमि में नमी की पर्याप्त मात्रा संरक्षित रहे, खरपतवार न उगें, मिट्टी का तापमान सामान्य बना रहे। मल्चिंग दो तरह की हो सकती है, 1. प्राकृतिक 2. कृत्रिम। कृषि में उत्पादन बढ़ाने एवम् लागत को कम करने हेतु किसान पिछले काफी वर्षों से मृदा में नमी संरक्षण के लिए विभिन्न उपाय जैसे सूखी पत्ती, धान की पुआल, सूखे गन्ने के पत्ते, कम्पोस्ट आदि का प्रयोग कर रहा है।

इस प्रकार की मल्चिंग करने के दौरान दो प्रकार की समस्याएं सामने आती हैं। एक तो हर समय पर ये हर जगह उपलब्ध नहीं हो पाता है और दूसरा थोड़े समय में ही सड़कर गल जाता है जब कि प्लास्टिक फिल्म वर्ष भर हर मौसम में सरलता से मिल जाती है। प्लास्टिक फिल्म मल्चिंग के महत्वपूर्ण गुणों की जानकारी के अभाव से अभी इस ओर किसानों का ध्यान आकर्षित नहीं हो पाता है। इन सबको देखते हुए बागवानी में प्लास्टिक कल्चर उपयोग सम्बन्धी राष्ट्रीय समिति (एन.सी.पी.ए.एच.) कृषि मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा प्लास्टिक मल्च करने की सिफारिश लगातार की जा रही है।

प्लास्टिक फिल्म विभिन प्रकार एवं विभिन्न रंगों में मिलता है जैसे कि काली फिल्म (जोकि खरपतवार को नियत्रण करने में उपयोग में ली जाती है), पारदर्शी फिल्म (जिसका उपयोग भूमि का तापमान बढ़ाने में किया जाता है), मिल्की रंग का फिल्म (जो भूमि कीटों का नियंत्रण करने के लिए उपयोग में लिया जाता है)। दो पक्ष फिल्म पीला/काला, सफेद/काला, काला/लाल, गलने वाली फिल्म, इत्यादि मगर आज सबसे अधिक प्रभावशाली काली पॉलिथीन फिल्म है जिसका प्रयोग मल्चिंग के रूप में हर जगह किया जा रहा है।

प्लास्टिक मल्चिंग के गुण :

1. नमी सरंक्षण के माध्यम से 40-60 प्रतिशत जल की बचत होती है।
2. यह खरपतवार को सरलता से नियंत्रण करती है।
3. भूमि को ठोस बनाने से रोकती है।
4. मृदा के तापमान को नियंत्रित करती है।
5. हवा एवं पानी से मिट्टी के कटाव को कम करना।
6. उत्पादन की गुणवत्ता में सुधार, फलों को गलने से बचाना क्योंकि फल व ज़मीन का सम्पर्क नहीं हो पाता है।
7. शीघ्र परिपक्वता।
8. पौधे की वृद्धि के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करना।
9. बीज के अंकुरण को बढ़ाना।
10. उत्पादकता में सुधार करना।
11. मृदाजनित रोगों से बचाव भी होता है।
12. पोषक तत्वों (नाइट्रोजन एवं पोटेशियम) का निथरना कम करती है।

फिल्म की चौड़ाई : प्लास्टिक फिल्म का चुनाव करते समय उसकी चौड़ाई पर विशेष ध्यान रखना चाहिए, जिससे कि यह कृषि कार्यों में भरपूर सहायक हो सके। सामान्यत: 60 सै.मी. तक की चौड़ाई वाली फिल्म को प्रयोग में लाया जाता है।

फिल्म की मोटाई : प्लास्टिक फिल्म की मोटाई सामान्यत: फसल के प्रकार एवं उसकी अवधि के अनुसार होनी चाहिए, जिससे कि फसल के समाप्त होने तक मल्चिंग भी स्वत: खत्म हो जाये। विभिन्न फसलों के लिए विभिन्न मोटाई वाली फिल्म 25 माइक्रोन से 100 माइक्रोन तक मोटाई वाली फिल्म प्रयोग में लायी जाती है।

प्लास्टिक मल्च फिल्म को बिछाना : मल्चिंग फिल्म को फसल की बुवाई या पौध रोपण से पहले बिछा देना चाहिए और प्लास्टिक फिल्म को सही तरह से मिट्टी में दबा देना चाहिए, जिससे कि वह हवा में इधर-उधर न उड़ सके। फल वृक्षों जैसे पुराने बागों में वृक्षों के थाले के आकार के बराबर की प्लास्टिक मल्च का टुकड़ा काटकर बिछाना चाहिए, बिछाने के बाद अच्छी तरह चारों तरफ उसे मिट्टी से दबा देना चाहिए।

सिंचाई व पोषक तत्वों का प्रबंधन :

- ❑ प्लास्टिक मल्च के उपरान्त खेत में सिंचाई का सर्वोत्तम साधन ड्रिप सिंचाई प्रणाली ही है।
- ❑ बूंद-बूंद सिंचाई में लेटरल पाइप को फिल्म (मल्च) के नीचे रखा जाता है। इससे सिंचाई एवं उर्वरीकरण (फर्टिगेशन) बिना किसी समस्या के सुविधापूर्वक हो जाता है।
- ❑ फुहारों के द्वारा भी सिंचाई सभंव है।

विभिन्न फसलों हेतु प्लास्टिक मल्चिंग फिल्म का प्रयोग :

फसलकार	फसल का नाम
मौसमी फसल (3-6 महीने वाली)	टमाटर, स्ट्रॉबेरी, शिमला मिर्च, पत्तागोभी, फूलगोभी इत्यादि।
वार्षिक (1 वर्ष)	पपीता, केला, अन्नानास, गुलदाउदी
बहुवर्षीय फसलें	आम, निम्बूवर्गीय फसलें, आंवला, अमरूद, गुलाब इत्यादि।

(पृष्ठ 4 का शेष)

250 मि.ली. फार्मोथियान (एन्थियों) 25 ई.सी. प्रति एकड 250 मि.ली. पानी मिलाकर हस्तचालित यंत्र से 2-3 सप्ताह के अंतराल पर छिड़काव करें।

4. पीला मोजैक बीमारी की प्रतिरोधक किस्म मुस्कान व सत्या की बिजाई करें। रोगी पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर दें तथा सफेद मक्खी के लिए कीटनाशक का छिड़काव करें।
5. फली बीटल व अन्य सूण्डियों की रोकथाम के लिए 250 मि.ली. मोनेक्रोटोफॉस (मोनोसिल-न्यूवाक्रान) 30 एस. एल. या 200 मि.ली. डाईक्लोरवास (न्यूवान) 76 ई.सी. या 500 मि.ली. एण्डोसल्फान (थायोडान-थायोटॉक्स-एण्डोसेल) 35 ई.सी. या 500 मि.ली. क्विनलफॉस (एकालक्स) 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।
6. कटाई उपरान्त खेत की गहरी जुताई करें ताकि कीड़ों की विभिन्न अवस्थाएं पक्षियों द्वारा व अन्य कारणों से नष्ट हो जाएं। ●

[1]चंद्रशेखर आज़ाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर

सीमित जल उपलब्धता की स्थिति में – गन्ना फसल का प्रबंधन

✍ मेहर चन्द, प्रीति शर्मा एवं नरेन्द्र सिंह
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, करनाल
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा क्षेत्रफल और उत्पादकता की दृष्टि से उपोष्णकटिबंधीय भारत में प्रमुख गन्ना उत्पादक राज्य है। वर्ष 2018-19 के दौरान क्रमश: क्षेत्रफल, उत्पादकता और चीनी रिकवरी 1.14 लाख हैक्टेयर, 84.5 टन प्रति हैक्टेयर और 10.25 प्रतिशत के साथ हरियाणा की प्रमुख नकदी व औद्योगिक फसल है। लेकिन गन्ने की औसत उत्पादकता और उत्पादन शीर्ष गन्ना उत्पादक राज्यों की तुलना में अभी भी कम है। प्रकृति की विभिन्न अनियमितताओं विशेष रूप से जैविक और अजैविक तनाव लंबे फसल चक्र के कारण, गन्ने की उत्पादकता पर प्रभाव डालते हैं। जलवायु परिवर्तन के परिणामस्वरूप मौसम की स्थिति में अचानक बदलाव को देखते हुए, अजैविक तनाव की घटना एक आम समस्या बन गई है। अजैविक तनाव गन्ने के वृद्धि और विकास को सीधे या परोक्ष रूप से फसल को प्रभावित करते हैं। सूखे को दुनिया भर में फसल उत्पादकता को प्रभावित करने वाला सबसे घातक अजैविक तनाव माना जाता है। गन्ने की खेती में पानी प्रमुख बाधाओं में से एक है और यह गन्ना उत्पादक और मिलरों की उत्पादकता और लाभप्रदता को प्रभावित करता है। जलवायु परिवर्तन से प्रभावित वर्षा की परिवर्तनशीलता के कारण समस्या और अधिक बिगड़ने वाली है। वर्षा की मात्रा और आवृत्ति में कमी के अलावा, तापमान में वृद्धि, वाष्पन-विकास के माध्यम से जल हानि और बढ़ सकती है। गन्ना लंबे समय तक बायोमास की बड़ी मात्रा में उत्पादन करने वाली फसल है। इसके लिए बड़ी मात्रा में पानी की आवश्यकता होती है। औसतन 1.0 टन गन्ने के लिए लगभग 100-200 टन पानी की आवश्यकता होती है। गन्ने की पानी की आवश्यकता 2000 से 3000 मि.मी./वार्षिक/हैक्टेयर अनुमानित है। जल अनुप्रयोग क्षमता 40 से 70 प्रतिशत तक होती है। 400 घन मीटर पानी में 1.0 टन शुष्क पदार्थ पैदा होता है। गन्ने को विभिन्न महीनों में लगभग सभी कृषि जलवायु परिस्थितियों में लगाया जाता है। और सभी विकास चरणों यानी अंकुरण, फसल की प्रारंभिक स्थापना, फुटाव, बढ़वार और पकने का समय में पानी के तनाव से ग्रस्त होता है । इस प्रकार प्रदेश के विभिन्न भागों में गन्ना अपनी फसल अवधि के दौरान किसी न किसी स्तर पर पानी के तनाव के कारण ग्रस्त रहता है। सामान्य नमी से किसी भी विचलन के परिणामस्वरूप, गन्ने की विकास दर और उपज दोनों प्रभावित होती है किसानों से आग्रह किया जाता है कि वे मिट्टी की नमी के संरक्षण और जल धारण क्षमता को बढ़ाने के लिए जल प्रबंधन तकनीकों को अपनाएं।

गन्ने में पानी की आवश्यकता एवं महत्वपूर्ण मांग अवधि

तनाव की स्थिति आमतौर पर ऐसी स्थिति को दर्शाती है जिसमें फसल को इसके विकास के लिए पर्याप्त नमी नहीं मिल पाती है। गन्ने में पानी का तनाव पत्ती क्षेत्र, पत्ती संख्या, पत्ती और डंठल विकास दर को कम कर देता है। और पत्ती के बंद होने और पत्ती के अंदर रंध्रों (छोटे-छोटे छिद्रों) को बंद करने में तेज़ी लाता है। इसके अलावा, पानी के तनाव के तहत, कोशिका विभाजन और कोशिका वृद्धि दोनों बाधित कर देता है और तना और पत्ती बढ़ाव सबसे गंभीर रूप से प्रभावित विकास प्रक्रियाएं हैं । सूखे की तनाव की स्थिति में गन्ने पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जिसमें कल्लों की उच्च मृत्यु दर, कम विकास दर, ऊंचाई और वज़न घटना, गन्ने की उपज, रस की मात्रा तथा गुणों में कमी, पत्तियों में आयन संचय, प्रत्यावर्तन दर, रंध्र प्रवाह, रंध्र के आकार में कमी, जड़ क्रियाओं और मिट्टी में पोषक तत्वों की आपूर्ति या पौधों में पोषक तत्वों के संचय आदि प्रभावित होते हैं। गन्ने पर पानी के तनाव के लक्षण प्रभाव को छोटे इंटर्नोड्स के रूप में देखा जा सकता है। पकने के दौरान नमी का तनाव रस की गुणवत्ता और सुक्रोज़ के संचय में सुधार करता है। यदि ये सभी मापदंड एक साथ प्रभावित हों तो गन्ना विकास या गन्ना उपज पर बहुत दुष्प्रभाव पड़ता है इसके अलावा, विभिन्न प्रक्रियाओं में शामिल विशिष्ट एंजाइमों की गतिविधियां भी कम हो जाती हैं। सूखे का तनाव पौधों के शारीरिक और जैव रासायनिक तंत्र को भी बाधित करता है जोकि अंतत: गन्ना विकास, रस की गणुवत्ता और उपज को प्रभावित करता है। प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों से निपटने के लिए पौधों ने विभिन्न अनुकूलन रणनीतियों का विकास किया है। इसमें अकार्बनिक आयनों की अधिक सांद्रता या कम आणविक वज़न वाले कार्बनिक विलेय, प्रसरणी अनुकूल ओस्मोलाइट्स और एंटीऑक्सीडेंट एंजाइमों का संश्लेषण शामिल है। पोषक तत्वों विशेषकर नाइट्रोजन के अवशोषण में सीधा प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

गन्ने के विकास के चार महत्वपूर्ण चरण हैं, जिसके दौरान यह पानी के तनाव के कारण गंभीर रूप से प्रभावित होता है। ये अवस्थाएं हैं - अंकुरित होना (अंकुरण), टिलरिंग और फॉर्मेटिव अवस्था, बढ़वार और पकना । और बाद के चरणों में पर्याप्त पानी की आपूर्ति से नुकसान को बहाल नहीं किया जा सकता है। गन्ने के जमाव, फुटाव ,बढ़वार और पकने के दौरान फसल को क्रमश: 200, 600, 1000 और 650 मिली मीटर पानी की आवश्यकता होती है। फसल को टिलरिंग स्टेज और बढ़ाव या भव्य विकास चरण के दौरान अधिकतम पानी की आवश्यकता होती है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस चरण के दौरान 70-80 प्रतिशत गन्ना उपज का उत्पादन होता है। गन्ने की उपज क्षमता का निर्धारण करने के लिए प्रारंभिक स्थापना और टिलरिंग दो सबसे महत्वपूर्ण चरण गन्ने के लिए अप्रैल से जुलाई के दौरान, सीमित जल उपलब्धता, कम उत्पादकता के मुख्य कारणों में से एक है। उच्च तापमान के साथ सीमित जल उपलब्धता, गन्ना विकास और उत्पादकता के लिए अधिक हानिकारक है। गंभीर जल तनाव पूरे पौधे को प्रभावित करता है । सामान्य फुटाव (रोपण के 40-120 दिन) जल की मांग की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण अवधि है। इस चरण के दौरान किसी भी स्तर पर पानी की कमी से गन्ने के विकास और उच्च बायोमास संचय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

गन्ने में सिंचाई अंतराल कई तरीकों जैसे मिट्टी में उपलब्ध नमी प्रतिशत, पौधे के अंदर नमी और वाष्पीकरण के आधार से निर्धारित किया जा सकता है। इनमें से, वाष्पीकरण दर के आधार पर सिंचाई करना अधिक व्यावहारिक है । अप्रैल से जून के दौरान उपोष्णकटिबंधीय भारत में वाष्पीकरण दर का मान 8-12 मिली मीटर प्रति दिन होता है। वाष्पीकरण दर के आधार पर, सिंचाई अंतराल तय किया जाता है। अप्रैल से जून की अवधि में बारिश न होने या कम वर्षा और उच्च वाष्पीकरण दर के कारण फसल अधिक प्रभावित होती है। इसलिए इस अवधि के दौरान पानी का प्रबंधन अधिक महत्वपूर्ण है। गन्ने में 8-10 सैं.मी. की गहराई पर सिंचाई की जाती है। इसलिए फसल की विभिन्न विकास अवधि के दौरान वाष्पीकरण दर के आधार पर, सिंचाई अलग-अलग दिनों के अंतराल पर की जाती है। गन्ने में सिंचाई 50 प्रतिशत उपलब्ध मिट्टी की नमी की स्थिति पर भी की जा सकती है। गन्ने में सिंचाई की संख्या जलवायु परिस्थितियों, मिट्टी के प्रकार, रोपण की विधि और खाद और उर्वरकों के उपयोग पर निर्भर करती है। शुष्क हवाओं और सूखे से जुड़े गर्म मौसम से फसल की

पानी की आवश्यकता बढ़ जाती है। बुवाई के समय मिट्टी में पर्याप्त नमी होनी चाहिए। पहली सिंचाई बुवाई के लगभग 30-40 दिन बाद और गर्मी के दिनों में सिंचाई 8-10 दिनों और सर्दियों में 20-25 दिनों के अंतराल पर और अगर सूखा पड़ता है तो बरसात के मौसम में भी जब आवश्यकता होती है तब 10-15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई की जाती है। उथले जड़ प्रणाली की वजह से मोढी फसल आम गन्ने की तुलना में सूखे के प्रति अतिसंवेदनशील होती हैं। तो मोढी फसल में कम अंतराल पर सिंचाई की जाती है। इस तरह कुल मिलाकर उत्तरी भारत में वर्षा के पानी (600 मिली मीटर) को छोड़कर गन्ना फसल में कम से कम 14-16 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। वार्षिक वर्षा और इसका वितरण गन्ना फसल की सिंचाई आवश्यकता को प्रभावित करने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। अगर बारिश फसल की जल मांग को पूरा नहीं करती है तो सिंचाई अति आवश्यक होती है।

सूखे की स्थिति में गन्ने का प्रबंधन :

- उन सूखा सहिष्णु किस्मों को उगाया जाना चाहिए जिन किस्मों में गहरी जड़ प्रणाली, तनाव की स्थिति में अपने रंध्रों को जल्दी से बंद करके वाष्पोत्सर्जन को कम करने की क्षमता हो और पुनरावृत्ति होने पर रंध्रों को जल्दी खोलती हो। विभिन्न किस्मों में जैसे सी ओ जे 64, सी ओ 89003 और सी ओ एस 8436, सी ओ एच 160 सूखे के प्रति अतिसंवेदनशील हैं, जबकि सीओ. 0238 सी ओ एस 767, सी ओ एच 99, सी ओ एच 110, सी ओ एच 119, सी ओ एच 150 और सी ओ एच 167 तुलनात्मक रूप से प्रतिरोधी हैं।
- उप मिट्टी की कठोर परत जड़ों की गहरी पैठ को प्रतिबंधित करती है और केवल ऊपरी सतह में जड़ों को सीमित करने को बढ़ावा देती है। जड़ के खराब विकास के कारण, फसल को मिट्टी की गहरी परतों से नमी का लाभ नहीं मिलता और फसल पानी के तनाव से ग्रस्त हो जाती है। तो उप-मिट्टी की कठोर परत को तोड़ने और जड़ों की गहरी पैठ को सुविधाजनक बनाने के लिए तीन साल में एक बार फसल की बुवाई से पहले 1.5 मीटर की दूरी पर 40-45 सैं.मी की गहराई पर क्रॉस सब सोइलिंग की सिफारिश की जाती है।
- जो क्षेत्र अक्सर सूखे से प्रभावित होते हैं उनके लिए बीज व मिट्टी का उपचार व कम दूरी पर बुवाई अनिवार्य है। चौड़ा खूड़ व जुड़वां लाईन विधि द्वारा गन्ने की बिजाई अधिक सफल होती है क्योंकि तुलनात्मक रूप से इस विधि में कम पानी ही लगता है। उन क्षेत्रों के लिए गन्ने के ऊपरी दो-तिहाई हिस्से की ही बिजाई करें।
- खुली खाइयों में बोई गई फसल को अपेक्षाकृत कम पानी की आवश्यकता होती है, यदि गन्ने को 20 से 25 सैं.मी. गहराई पर बोया जाता है, तो निचली परतें सिंचाई के पानी या बारिश की बेहतर समावेश के माध्यम से अधिक पानी का भंडारण कर सकती हैं।
- खेत को कम चौड़ाई की क्यारियों में विभाजित कर लें ताकि पानी की कम मात्रा में भी खेत की सिंचाई की जा सके।
- सूखे के प्रतिरोध की मात्रा सूखे से पहले के महीनों में दी गई सिंचाई पर निर्भर करेगी। गर्मी से पहले बार-बार होने वाली सिंचाई (फ्लड इरिगेशन), जड़ों को गहरी परतों में घुसने के लिए प्रोत्साहित नहीं करती। जब सूखा आता है, तो ये जड़ें ऊपरी सतह पर सीमित रहती हैं। पर गहरी परतों से नमी का लाभ नहीं ले पाती हैं ।
- सूखे की अवधि के दौरान वैकल्पिक खूड़ों (एक खूड छोड़कर) में सिंचाई करें। जहां भी संभव हो पारदर्शी पॉलिथीन शीट का प्रयोग करें।
- वैकल्पिक पंक्तियों में सूखी पत्ती या कोई भी फसल अवशेष बिछाना मिट्टी के भौतिक गुणों को बढ़ाने और मिट्टी की जल धारण क्षमता में सुधार करने में मदद करता है।
- मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ का उपयोग मिट्टी में नमी के संरक्षण में मदद करता है। इसलिए मिट्टी जल धारण क्षमता में सुधार के लिए बुवाई के समय कम से कम 4 टन प्रति एकड़ की दर से गोबर की खाद खूड़ों में डालनी चाहिए।
- निराई बार-बार करनी चाहिए या खरपतवारनाशक का प्रयोग करना चाहिए। अत्यधिक सूखे की स्थिति में फसल को टूटने और चोट को कम करने के लिए निराई-गोडाई करने से बचें ।
- पानी के तनाव के प्रभाव को कम करने के लिए 10-12 दिन के अन्तराल पर 2.5 प्रतिशत यूरिया और पोटाश उर्वरकों के तीन छिड़काव मई से जून के दौरान किये जाने चाहिएं। स्प्रे से पहले हल्की सिंचाई अवश्य करें। पोटाश स्प्रे अकेले या यूरिया के साथ बहुत कम सांद्रता में उच्च गन्ना उपज और पानी के तनाव की स्थिति के तहत गुणवत्ता के संयोजन में मदद करता है।
- सीमित पानी की स्थिति के तहत संतृप्त चूने के पानी के साथ पोरियों को भिगो कर रोपण किया जा सकता है (एक घंटे के लिए 400 लीटर पानी में 80 किलो चूना) इस विधि के कारण, गर्मी के महीनों में वास्तविक पानी के तनाव का सामना करने के लिए आवश्यक होने पर फसल कम प्रभावित होती है।
- ड्रिप या स्प्रिंकलर सिंचाई को जहां भी संभव हो अपनाया जा सकता है ड्रिप या स्प्रिंकलर सिंचाई से पैदावार में 10-15 प्रतिशत की वृद्धि के अलावा लगभग 40 प्रतिशत पानी की बचत में मदद मिलती है। चौड़ा खूड़ व जुड़वां लाईन विधि द्वारा गन्ने की बिजाई से ड्रिप स्थापना लागत को 40 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है।
- नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश उर्वरकों का बिजाई के समय प्रयोग बेहतर जड़ विकास को बढ़ावा देता है। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश पोषक तत्वों के रूप में महत्वपूर्ण है। मिट्टी से पोषक तत्वों की कम उपलब्धता तनाव की स्थिति के तहत वृद्धि में कमी का मुख्य कारक है। पोटेशियम आयन रंध्रों को खोलना और बंद करने को नियंत्रित करते हैं जो पानी के वाष्पोत्सर्जन नुकसान को नियंत्रित करता है।
- सूखे की अवधि के दौरान दीमक, कंसुआ, सफेद मक्खी, बद्धी माइट, रूट बोरर और पाइरिला का हमला बढ़ सकता है। इसलिए समय पर अनुशंसित कीटनाशकों का उपयोग करें।
- सूखे की अवधि के दौरान गन्ने की फसल में लोहे की कमी दिखाई दे सकती है। इसलिए लोहे की कमी को पूरा करने के लिए 1.0 प्रतिशत आयरन सल्फेट +2.5 प्रतिशत यूरिया के 10-12 दिन के अन्तराल पर तीन स्प्रे करने से कमी के लक्षण दूर हो जाते हैं। आम फसल की तुलना में आमतौर पर मोढी फसल में लोहे की कमी अधिक गंभीर होती है। ●

लेखकों से अनुरोध

हरियाणा खेती के लिए लेख कृपया टाईप करवा कर भेजें अन्यथा लेख स्वीकार नहीं किए जाएंगे। कृपया अपने विभाग का नाम अवश्य लिखें। लेख में अंग्रज़ी शब्दों का प्रयोग न करें। टाईपिंग के लिए **कृति देव फोन्ट का ही प्रयोग करें**। अपना लेख हमें ई-मेल पर भी भेज सकते हैं : **haryanakhetihau@gmail.com**

कृषि-आधारित उद्योगों के प्रोत्साहन हेतु योजनाएं एवं वित्तीय सहायता संस्थान

✍ **भरत सिंह घणघस, राजेश कुमार एवं प्रदीप कुमार चहल**
विस्तार शिक्षा विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत विश्व में तेज़ी से बढ़ती कृषि आधारित अर्थव्यवस्था है जैसा कि राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (NSO) 68वें चरण के रोज़गार संघित आंकड़े दर्शाते हैं कि लगभग 48.9 प्रतिशत कामगारों की आजीविका का मुख्य साधन कृषि है। 2011 की जनगणना के अनुसार 70 प्रतिशत जनगसंख्या गांवों में बसती है। जिसकी आय में वृद्धि पहली प्राथमिकता होगी। लेकिन सबसे अधिक ग्रामीण रोज़गार देने वाले कृषि क्षेत्र में आय बढ़ाने वाली मूल्य आधारित वृद्धि की रणनीति लम्बे समय तक नहीं चल सकती क्योंकि कृषि आधारित उद्योगों की वजह से ही कृषि उत्पादों की मांग बाज़ार में बनी रहती है अन्यथा कृषि फसलों के अपेक्षित खरीददार नहीं मिल सकते। कपड़ा, चीनी, वनस्पति तेल, बागान इत्यादि किसानों से ही कच्चा माल प्राप्त करते हैं इसके अलावा अगर हम भारत के कृषि उत्पादन पर नज़र डालें तो हम पाते हैं विश्व में दूध, केला, आम, मसाले, हींग, मछली और दालों के उत्पादन में भारत प्रथम स्थान पर है जबकि अनाजों, सब्जियों और चाय उत्पादन में दूसरे स्थान पर है। देश में वर्ष 2018-19 में 31.39 करोड़ टन बागवानी फसलों, 28.51 करोड़ टन खाद्यानों 18.77 करोड़ टन मछली और समुद्री उत्पादों का उत्पादन हुआ। लेकिन मात्र 2-3 प्रतिशत कृषि वस्तुओं का प्रसंस्करण किया जाता है तथा विभिन्न कारणों से 30-35 प्रतिशत उत्पादन हर वर्ष बरबाद हो जाता है जिसका समाधान खाद प्रसंस्करण उद्योग स्थापित कर किया जा सकता है क्योंकि प्रसंस्कृत खाद्य और खाद्य पदार्थों में ज़बरदस्त निर्यात एवं स्वरोज़गार क्षमता है। कृषि आधारित उद्योग मुख्य रूप से कम निवेश वाले, ग्रामीण क्षेत्रों में आमदन बढ़ाने के साथ-साथ रोज़गार प्राप्त होते हैं। भारत सरकार ने किसानों की आय 2022 तक दुगनी के लक्ष्य को हासिल करने के लिए कृषि आधारित उद्योगों के बढ़ावे हेतु विभिन्न योजनाएं आरंभ की हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :

प्रधानमंत्री किसान संपदा योजना : खेत से लेकर खुदरा बिक्री केंद्र तक दक्ष आपूर्ति शृंखला प्रबन्धन के साथ आधुनिक अवसंरचना सृजन करना जिसमें खाद प्रसंस्करण का आधुनीकरण प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों का निर्माण बढ़ना, डेयरी व मत्स्य आदि कृषि उत्पादों का मूल्य संवर्धन आदि शामिल हैं इसके अंतर्गत सरकारी अनुदान नाबार्ड और मुद्रा योजना के तहत आसान शर्तों एवं सस्ती दर पर ऋण उपलब्ध करवाना है।

राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन : इसके अंतर्गत गरीब परिवार की महिलाओं को स्वयं सहायता समूहों के रूप में प्रशासनिक सहायता से संगठित किया जाता है तथा किसी विशेष आमदन परस्त कार्य में कौशल प्रदान किया जाता है और सस्ती दर पर बैंक या अन्य वित्तीय संस्था द्वारा ऋण की व्यवस्था की जाती है।

स्टार्टअप ग्राम उद्यमिता कार्यक्रम : इसके अंतर्गत देश के हर ज़िले में स्थित कृषि विज्ञान केन्द्रों के द्वारा कृषि आधारित उद्योग धंधों के लिए लघु अवधि के प्रशिक्षण कृषि, पशुपालन और खाद्य पदार्थों के व्यवसाय के लिए दिए जाते हैं।

कृषि उड़ान (Agri-Udaan) **:** इसके अंतर्गत स्टार्टअप का मूल्यांकन तथा संमंवित निवेश स्रोत जोड़कर आत्मनिर्भर बनाना शामिल है।

एस्पायर : सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्योग मंत्रालय द्वारा संचालित योजना का मुख्य उद्देश्य नवाचार, स्वरोज़गार एवं कृषि आधारित उद्योगों को बढ़ावा देना है।

प्रधानमंत्री मत्स्य संपदा योजना : इसका मुख्य उद्देश्य मत्स्य उद्योग के फलने-फूलने के लिए बुनियादी सुविधाएं सृजित एवं आधुनीकरण के साथ-साथ प्रसंस्करण एवं गुणवत्ता नियंत्रण तथा मूल्य संवर्धन शामिल है।

मैगा फूड पार्क योजना : इस योजना का मूल उद्देश्य किसानों, प्रसंस्करणकर्त्ताओं और खुदरा कारोबारियों को एक साथ लाते हुए कृषि उत्पादों को बाज़ार से जोड़ने के लिए एक तंत्र उपलब्ध कराना। यह मेक इन इंडिया की उप-योजना है।

राष्ट्रीय डेयरी उद्यमशीलता विकास योजना : जिसमें 1-10 दूधारू पशुओं वाली डेयरी इकाई लगाना, बछियों को पालना, दूध की मशीनरी खरीदना, बल्क मिल्क चिलर लगाना, दुग्ध प्रसंस्करण उपकरण खरीदना, मिल्क पार्लर खोलना, कोल्ड चैन आदि विकसित कर दूध एवं दुग्ध उत्पादों की जानकारी शामिल है।

राष्ट्रीय बांस मिशन : इसके तहत बांस उत्पादन को वाणीज्यिक स्तर पर पहुंचाना तथा अन्य मूल्य संवर्धित उत्पादों का निर्माण जैसे लैमिनेटेड ब्रांड, बांस के रेशे उत्पादन, बांस की फर्श, दवाएं, लुगदी, खाद्य पदार्थ आदि प्रयोग द्वारा बांस उद्योग को प्रोत्साहन देना शामिल है।

एग्रि बिजनेस : इसके तहत कृषि स्नातकों को कृषि के विभिन्न क्षेत्रों जैसे बागवानी, रेशम उद्योग, डेयरी उद्योग, मुर्गी पालन, मधु मक्खी पालन, डायग्नॉस्टिक सर्विस (जैसे पानी व मिट्टी जांच, कीट एवं बीमारी जांच), गुणवत्तापूर्वक बीज उत्पादन इत्यादि कृषि संबंधी विषयों पर प्रशिक्षण दिया जाता है तथा अपना उद्यम स्थापित करने के लिए सस्ती दर पर 25 लाख रुपये तक के ऋण दिये जाते हैं।

मुद्रा योजना : इसके तहत सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योग स्थापना के लिए 10 लाख रुपए तक के ऋण सस्ती एवं आसान किस्तों में युवा उद्यमियों को प्रदान किये जाते हैं।

प्रधानमंत्री कौशल योजना : इसका मुख्य उद्देश्य युवाओं को स्वरोज़गापरक उद्योग आधारित प्रशिक्षण एवं कौशल प्रदान कर बेरोज़गारी को खत्म करना है।

वित्तीय सहायता : कृषि आधारित उद्योगों के विकास के लिए ऋण एवं वित्तीय सहायता विभिन्न बैंकों एवं सस्थानों द्वारा प्रदान की जाती है जिनमें प्रमुख तौर पर शामिल हैं :-

1. राष्ट्रीय कृषि एवं ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड)
2. भारतीय राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन संघ (नैफेड)
3. राष्ट्रीयकृत बैंक व उनकी अधिकृत शाखाएं
4. सीडबी (Small Industrial Development-Bank)
5. कृषि और प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण
6. सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यम मंत्रालय, भारत सरकार
7. कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार इत्यादि शामिल हैं।●

आवश्यक सूचना

''**हरियाणा खेती**'' मासिक पत्रिका के सदस्यों को सूचित किया जाता है कि हम उन्हें उनकी पत्रिका नियमित रूप से भेज रहे हैं, अगर फिर भी किसी सदस्य को उसकी पत्रिका नहीं मिल रही है तो अपने क्षेत्र के डाकिया (पोस्टमैन) से सम्पर्क करें। अगर फिर भी पत्रिका नहीं मिलती है तो आप हमारे कार्यालय में आकर अपने हाथ से पत्रिका को पोस्ट करके अपनी तसल्ली करें।

सह-निदेशक प्रकाशन

ई-कचरा : पर्यावरण के लिए खतरा

✍ **रोहतास कुमार, रूही एवं एच. के. यादव**
मृदा विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

बिजली/बैटरी संचालित-उपकरण क्रान्ति ने हमारे जीवन को सुख-सुविधाओं से परिपूर्ण कर दिया है। इन उपकरणों जैसे कंप्यूटर, मोबाइल, एलसीडी, रेफ्रिजरेटर, एयर कण्डीशन, सेल्यूलर फोन, वाशिंग मशीन, कैमरा आदि के आविष्कार ने संचार तन्त्र को एक नया विस्तार एवं व्यावसायिक गतिविधियों को प्रोत्साहन देने के साथ-साथ रोज़गार के नये अवसरों को भी बढ़ावा मिला है। परन्तु आज बड़ी संख्या में खराब होने वाली इन्हीं इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के ढेर ने ई-कचरा के रूप में एक नई पर्यावरणीय समस्या को जन्म दिया है। पर्यावरण को लेकर अभी हमारे देश में पूरी तरह जागरूकता नहीं आई है। प्रदूषण जैसे अहम मुद्दे विकास के नाम पर पीछे छूट गए हैं। ऐसे में ई-कचरे (इलेक्ट्रॉनिक) के बारे में देश में बहुत कम जानकारी है और न ही इस दिशा में कोई कदम उठते नज़र आ रहे हैं। इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों से बाज़ार भरे पड़े हैं। तकनीक में हो रहे लगातार बदलावों के कारण उपभोक्ता भी नए-नए इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों से लोग अपना घर भर रहे हैं। ऐसे में पुराने उत्पादों को वह कबाड़ में बेच देता है और यहीं से जन्म लेती है, 'ई-कचरे' की समस्या। ई-कचरा से तात्पर्य बेकार पड़े ऐसे इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों से है, जो अपने-उपयोग के उद्देश्य के लिए उपयुक्त नहीं रह जाते। ई-कचरा को ई-अपशिष्ट भी कहा जाता है। 'ई-कचरा' आई.टी. कंपनियों से निकलने वाला वह कबाड़ा है, जो तकनीक में आ रहे परिवर्तनों और स्टाइल के कारण निकलता है। जैसे कि पहले बड़े आकार के कम्प्यूटर, मॉनीटर आते थे, जिनका स्थान अब स्लिम और फ्लैट स्क्रीन वाले छोटे मॉनीटरों ने ले लिया है। माउस, की-बोर्ड, मोबइल या अन्य उपकरण जो चलन से बाहर हो गए हैं, वे ई-कचरे की श्रेणी में आ जाते हैं। पुरानी शैली के कम्प्यूटर, मोबाइल फोन, टेलीविज़न और इलेक्ट्रॉनिक खिलौनों तथा अन्य उपकरणों के बेकार हो जाने के कारण भारत में हर साल इलेक्ट्रॉनिक कचरा पैदा होता है। ई-कचरे में आम तौर पर खराब/फेंके हुए कंप्यूटर मॉनीटर, मदरबोर्ड, कैथोड रे ट्यूब (सीआरटी), प्रिंटेड सर्किट बोर्ड (पीसीबी), मोबाइल फोन और चार्जर, कॉम्पैक्ट डिस्क, हेडफोन, एलईडी, एलसीडी (लिक्विड क्रिस्टल डिस्प्ले) या प्लाज़्मा टीवी, एयर कंडीशनर, रेफ्रिजरेटर, वाशिंग मशीन, कैमरा, इन्वर्टर-बैटरी आदि शामिल हैं। यदि ई-कचरे की मात्रा दिनों दिन इसी तरह से बढ़ती गई, तो आने वाले समय में पर्यावरण के साथ-साथ मानव स्वास्थ्य पर भी इसका प्रतिकूल प्रभाव पडेगा।

विश्व में सबसे अधिक इलेक्ट्रॉनिक कचरा (ई-कचरा) पैदा करने वाले शीर्ष पांच देशों में भारत का पांचवां स्थान है। इसके अलावा इस सूची में चीन, अमेरिका, जापान और जर्मनी हैं। दुनिया भर में उत्पन्न ई-कचरे की मात्रा 3.15% की दर से बढ़ने की उम्मीद है। एक अनुमान के अनुसार ई-कचरा की वैश्विक मात्रा 2021 तक 5.52 करोड़ टन तक पहुंचने की संभावना है जोकि साल 2016 में 4.47 करोड़ टन थी। एक ख़बर के अनुसार, भारत में करीब 20 लाख टन सालाना ई-कचरा पैदा होता है और कुल 4,38,085 टन कचरा सालाना रिसाइकिल किया जाता है। साल 2016 में पैदा हुए कुल ई-कचरे का सिर्फ 20 प्रतिशत (89 लाख टन) ही पूर्ण रूप से एकत्र और पुनरावृत्ति कर दोबारा प्रयोग कर प्रयोग में लाया गया है, जबकि शेष ई-कचरे का कोई रिकॉर्ड नहीं है। ई-कचरे में मौजूद सभी कच्चे माल का 2016 में कुल मूल्य लगभग 61.05 अरब डॉलर है, जो दुनिया के कई देशों के जीडीपी से अधिक है।

बढ़ते हुए ई-कचरे का मुख्य कारण बढ़ती हुई जनसंख्या है। जैसे-जैसे भारत के लोग अमीर बनते जा रहे हैं वैसे- वैसे ही अपनी सुविधा के लिए नए-नए इलेक्ट्रॉनिक सामान और उपकरण खरीद रहे हैं तथा पुराने खराब उपकरणों को बिना किसी व्यवस्थित तरीके से निपटाने के कारण ई-कचरे के रूप में एक नयी समस्या को जन्म दे रहे हैं।

तालिका 1. कुल ई-कचरा सामग्री में अलग अलग क्षेत्रों विभिन्न उपकरणों का योगदान

क्र. सं.	विभिन्न क्षेत्रों से उपकरण	कुल ई-कचरा सामग्री में योगदान (%)
1	कंप्यूटर उपकरणों	70
2	दूरसंचार उपकरणों	12
3	विद्युत उपकरणों	08
4	चिकित्सा उपकरणों	07
5	घरेलू सामान	04

चूंकि मानव और पर्यावरण एक-दूसरे पर निर्भर होते हैं। वैश्विक स्तर पर पर्यावरण के प्रति जागरूकता लाने के लिए संयुक्त राष्ट्र द्वारा घोषित हर वर्ष पांच जून को पर्यावरण दिवस मनाया जाता है। प्रमुख वाणिज्य एवं उद्योग मंडल एसोचौम और एनईसी (नेशनल इकोनॉमिक काउंसिल) द्वारा जारी एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में ई-कचरा उत्पन्न करने में सर्वाधिक योगदान महाराष्ट्र (19.8 प्रतिशत) का है तथा यह राज्य केवल 47,810 टन कचरे को सालाना पुनरावृत्ति कर दोबारा प्रयोग करने के लायक बनाता है। वहीं ई-कचरा उत्पन्न में तमिलनाडु का योगदान 13 प्रतिशत है और वह 52,427 टन कचरे की पुनरावृत्ति करता है। जबकि उत्तर प्रदेश (10.1 प्रतिशत) 86,130 टन कचरा पुनरावृत्ति करता है। देश के अन्य राज्यों का ई-कचरे में योगदान निम्नलिखित है :

राज्य (%)	ई-कचरे में योगदान	राज्य	ई-कचरे में योगदान (%)
पश्चिम बंगाल	9.8	गुजरात	8.8
दिल्ली	9.5	मध्य प्रदेश	7.6
कर्नाटक	8.9		

वर्तमान समय में भारत में ई-कचरे की उत्पादन क्षमता प्रसंस्करित करने की क्षमता से 4.56 गुना अधिक है। कर्नाटक में ई-कचरा प्रसंस्करण करने के लिए सर्वाधिक 57 इकाइयां हैं जिनकी प्रसंस्करण क्षमता लगभग 44,620 टन है, वहीं महाराष्ट्र में 32 इकाइयां हैं जो 47,810 टन ई-कचरा प्रसंस्करित कर सकती हैं।

उत्तर प्रदेश में 86,130 टन को प्रसंस्करण करने के लिए 22 इकाइयां हैं और हरियाणा में 49,981 टन के लिए केवल 16 इकाइयां है। तमिलनाडु में 52,427 मीट्रिक टन प्रति वर्ष प्रसंस्करण करने के लिए 14 इकाइयां हैं और गुजरात में 12 इकाइयां है, जिनकी प्रसंस्करित करने की क्षमता 37,262 है जबकि राजस्थान में 10 इकाइयां जो 68,670 मीट्रिक टन प्रति वर्ष को प्रसंस्करित कर सकती हैं। वहीं तेलंगाना में 11,800 मीट्रिक टन के ई-कचरा प्रसंस्करित करने के लिए 4 इकाइयां हैं। घरेलू और व्यावसायिक इकाइयों के कचरे के पृथक्करण, प्रसंस्करण और निपटान के लिये केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड (Central Pollution Control Board & CPCB) और भोपाल नगर निगम (Bhopal Municipal Corporation& BMC) के बीच समझौता ज्ञापन के अनुसार भारत का पहला 'ई-कचरा क्लिनिक' मध्य प्रदेश के भोपाल में जल्द ही स्थापित किया जाएगा।

भारत के कुल ई-कचरे का केवल 5% ही, खराब बुनियादी ढांचे के

(शेष पृष्ठ 19 पर)

जुलाई मास के कृषि कार्य

फसलों में

बाजरा

संकर बाजरे की किस्में, एच एच बी 50, एच एच बी 60, एच एच बी 94, एच एच बी 67 (संशोधित), एच एच बी 117, एच एच बी 146, एच एच बी 197, एच एच बी 216, एच एच बी 223 व एच एच बी 226, एच एच बी 234, एच एच बी 272, एच एच बी 299, एच एच बी 311 या कम्पोज़िट किस्में, एच सी 10 व एच सी 20 बोएं। संकर बाजरे का बीज हर साल नया ही लेकर बोएं। बिजाई के लिए जुलाई का प्रथम पखवाड़ा सबसे उत्तम समय है परंतु बारानी इलाकों में मानसून की पहली वर्षा होने पर ही बिजाई करें। खेत को 2 या 3 बार जोतकर फौरन सुहागा लगाकर अच्छी तरह तैयार करें ताकि घासफूस न रहे। बारानी क्षेत्रों में वर्षा से पहले खेत के चारों तरफ खूब मज़बूत डोलें बनाएं ताकि खेत में पानी जमा हो जाए जो आगामी फसल के काम आएगा। एक एकड़ के लिए 1.5 से 2 किलोग्राम बीज चाहिए। खेत में सही उगाव के लिए बिजाई खूडों में इस तरह करें कि बीज के ऊपर 2.0 से 3.0 सैं.मी. से अधिक मिट्टी न पड़े। दो खूडों का फासला 45 सैं.मी. रखें। वर्षा के मौसम में मेड़ों पर बिजाई करना अच्छा होता है। इस तरीके से बिजाई के लिए विश्वविद्यालय के शुष्क खेती अनुसंधान केन्द्र द्वारा निर्मित मेड़ों पर बीजने वाले हल का प्रयोग करें। आम उपजाऊ व सिंचाई की सुविधा वाली भूमि में प्रति एकड़ 62.5 किलोग्राम नाइट्रोजन (135 कि.ग्रा. यूरिया), 25 कि.ग्रा. फास्फोरस (150 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) तथा 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट डाली जानी चाहिए। आधी नाइट्रोजन बिजाई के समय ड्रिल करें व शेष दो बार दें-एक छंटाई के समय व दूसरी सिट्टे बनते समय। असिंचित बाजरे में 16 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (35 कि.ग्रा. यूरिया) व 8 कि.ग्रा. फास्फोरस (50 कि.ग्रा. एस एस पी) प्रति एकड़ बिजाई के समय ड्रिल करें। सिंचित बाजरा में फास्फोरस व ज़िंक सल्फेट बिजाई के समय पोरें।

तकनीकी सहायता :

- एच. एस. सहारण, सह-निदेशक (कृषि परामर्श सेवा)
- सुरेन्द्र सिंह, सह-निदेशक (बागवानी)
- तरुण वर्मा, ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (कीट विज्ञान)
- डी. एस. दुहन, सहायक वैज्ञानिक (सब्जी विज्ञान)
- रोहतास कुमार, सहायक वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान)
- राजेश दहिया, सहायक प्राध्यापिका (गृह विज्ञान)
- वी. एस. हुड्डा, ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान)
- देवेन्द्र सिंह बिढान, सहायक प्राध्यापक (पशु उत्पादन प्रबन्धन)
- सूबे सिंह, सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भूमि में यदि लौह तत्व की कमी है (डी.टी.पी.ए. निष्कर्षणीय लौह तत्व 4.5 पी.पी.एम. से कम है) तो 0.5 प्रतिशत हरा कशीश (आयरन सल्फेट) के घोल का छिड़काव बाजरा की बिजाई के 25-30 दिन बाद (फुटाव अवस्था) करें।

चेपा या अरगट रोग से बचाव हेतु बीज को 10 प्रतिशत नमक के घोल (10 लीटर पानी में 1 किलोग्राम नमक) में डुबो लें और तैरते हुए पिण्डों व अन्य पदार्थों को बाहर निकाल कर जला दें। नीचे बैठे हुए बीज को साफ पानी में 3-4 बार धोकर सुखा लें और 4 ग्राम थाइरम प्रति किलोग्राम बीज के मिश्रण से बीजोपचार करके बिजाई करें। यदि बीज पहले से उपचारित न हो तो डाऊनी मिल्ड्यू (जोगिया या हरे बालों वाला रोग) की शुरुआती रोकथाम के लिए बीज को मैटालेक्सिल 35 प्रतिशत से 6 ग्राम प्रति किलो बीज के हिसाब से उपचारित करें। बाजरे की बिजाई के 3 और 5 सप्ताह बाद निराई-गुड़ाई करें। खरपतवारों की रोकथाम रसायनों द्वारा भी की जा सकती है। बिजाई के तुरंत बाद 400 ग्राम एट्राजीन (50 प्रतिशत घु. पा.) प्रति एकड़ 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें। यदि बिजाई के तुरन्त बाद एट्राजीन का प्रयोग न कर सकें तो बिजाई के बाद 10-15 दिन के बीच में भी उतनी ही मात्रा प्रयोग कर सकते हैं। ज्योंही खेत में कोढिया या डाऊनी मिल्ड्यू दिखाई दे प्रभावित पौधे उखाड़ कर नष्ट कर दें और वहां स्वस्थ पौध रोप दें ताकि खेत में पौधों की संख्या पूरी बनी रहे। सफेद लट के नियंत्रण के लिए विश्वविद्यालय की सिफारिश के अनुसार मानसून की वर्षा होते ही गांवों में अभियान चलाएं।

पछेती दशा में बाजरे की रोपाई करने के लिए जुलाई माह के पहले सप्ताह में नर्सरी में क्यारियों में बिजाई करें। नर्सरी के लिए क्यारियां ऐसी जगह बनाएं जहां वर्षा के न होने पर भी सिंचाई के लिए पानी का साधन हो। वर्षा की हालत में बीज छिटक कर तथा सूखी अवस्था में तंग कतारों में बोएं। नर्सरी में आवश्यकतानुसार सिंचाई करें। खेत में रोपाई के लिए लगभग तीन हफ्ते में पौध तैयार हो जाती है।

मक्का

संकर मक्का की एच एच एम-1, एच एच एम-2, एच एम-4, एच एम-5, एच एम-10, एच एम-11, एच क्यू पी एम 1, एच क्यू पी एम 5, एच क्यू पी एम 4 किस्में ही बीजें। इनकी बिजाई कतारों में 75 सैं.मी. की दूरी पर 20 जुलाई तक पूरी कर लें। बिजाई के 10 दिन बाद फालतू पौधे निकाल कर पौधे से पौधे की दूरी 20 सैं.मी. रखें। बीज की गहराई 3 से 5 सैं.मी. हो। साधारणतया 8.0 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ बिजाई के लिए काफी होता है। मक्की में खरपतवारों को कल्टीवेटर, व्हील हैंड या खुरपे/कसोले द्वारा निराई करके या खरपतवारनाशक दवाइयों से नष्ट किया जा सकता है। बिजाई के तुरन्त बाद 400-600 ग्राम एट्राजीन (50 प्रतिशत (घु.पा.) प्रति एकड़ 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें। मक्की में सभी तरह के खरपतवारों के नियन्त्रण के लिए टैम्बोट्रायोन (लोडिस 34.4 प्रतिशत) का 115 मिली. तैयार शुद्ध मिश्रण+400 मि.ली. चिपचिपे पदार्थ को 200 लीटर पानी में घोलकर बिजाई के 10-15 दिन

बाद या खरपतवार की 2-3 पत्ती की अवस्था पर प्रति एकड़ छिड़कें। 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (43 कि.ग्रा. यूरिया), 24 कि.ग्रा. फास्फोरस (150 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट), 24 कि.ग्रा. पोटाश (40 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश), 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ बिजाई पर पोरें। 20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (43 कि.ग्रा. यूरिया)/एकड़ पौधों के घुटने तक बड़ा होने पर व इतना ही झंडे आने से कुछ पहले दें।

धान

धान की आई आर-64, एच के आर-46, एच के आर-47, पी आर-106, जया, एच के आर-120, एच के आर-126, एच के आर-127 व हरियाणा संकर धान-1 की रोपाई 7 जुलाई तक पूरी कर लें। कम अवधि वाली किस्म गोविन्द व एच के आर -48 की रोपाई जुलाई अन्त तक कर सकते हैं। धान की अन्य किस्में, लंबी बासमती जैसे तरावड़ी बासमती, सी एस आर-30, बासमती-370 व बौनी बासमती जैसे हरियाणा बासमती-1, पूसा बासमती-1, पूसा बासमती-4 (पूसा 1121) की रोपाई भी जुलाई के मध्य में पूरी कर लें। इसमें ब्लास्ट या बदरा रोग कम लगता है। खेत में अच्छी तरह से पौध चलने के लिए व पानी बनाए रखने के लिए खेत को अच्छी तरह कद्दू करके एकसार कर लें। रोपाई के लिए कम समय वाली बौनी किस्मों हेतु 25-30 दिन पुरानी पौध प्रयोग करें। धान की समय पर रोपाई के लिए लंबी किस्मों में कतारों में 20 सैं.मी. व पौधों में 15 सैं.मी. दूरी रखें। जबकि देर से रोपाई हेतु यह दूरी 15-15 सैं.मी. रखें। एक जगह कम से कम 2-3 पौध सीधी लगाएं लेकिन 2-3 सैं.मी. से अधिक गहरी नहीं। कल्लर वाले खेतों में एक जगह कम से कम 3-4 पौध लगाएं। धान की बौनी मध्यम, मध्यम काट अवधि व संकर धान वाली किस्मों जैसे जया, पी आर 106, एच के आर 120, एच के आर 126 एच के आर 127 व हरियाणा संकर धान-1 में 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (130 कि.ग्रा. यूरिया), 24 किलोग्राम फास्फोरस (150 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट), 24 किलोग्राम पोटाश (43 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश) व 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ का प्रयोग करें जबकि कम अवधि वाली गोबिन्द में 48 किलोग्राम नाइट्रोजन व ऊपर दी गई फास्फोरस, पोटाश व ज़िंक सल्फेट की मात्रा प्रयोग करें। नाइट्रोजन की 1/3 मात्रा, फास्फोरस, पोटाश व ज़िंक सल्फेट की पूरी मात्रा रोपाई के समय खेत में डालें। 1/3 नाइट्रोजन की मात्रा रोपाई के 21 दिन बाद और बाकी 1/3 नाइट्रोजन रोपाई के 42 दिन बाद खेत में डालें। रोपाई पर डालने वाली 1/3 नाइट्रोजन की मात्रा रोपाई के एक सप्ताह के अंदर भी डाली जा सकती है। अगर खेत में ढैंचे की हरी खाद का प्रयोग किया गया है तो नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश की 2/3 मात्रा का ही प्रयोग करें। लम्बी बासमती धान में 24 किलोग्राम नाइट्रोजन (50 कि.ग्रा. यूरिया), 12 किलोग्राम फास्फोरस (75 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) व 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ दें। नाइट्रोजन रोपाई के 21 व 42 दिन बाद दो बार डालें। बौनी बासमती धान में 36 किलोग्राम नाइट्रोजन (80 कि.ग्रा. यूरिया), 12 किलोग्राम फास्फोरस (75 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) व 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट दें। नाइट्रोजन की 1/3 मात्रा व फास्फोरस की पूरी मात्रा पौध लगाते समय दें। बाकी 1/3 मात्रा 21 दिन बाद व 1/3 मात्रा 42 दिन बाद दें। धान की फसल में सांवक और मोथा बहुतायत में पाए जाते हैं। इनकी रोकथाम के लिए ब्यूटाक्लोर (मचौटी, डेलक्लोर ई.सी. व मिलक्लोर, नर्वदाक्लोर, कैपक्लोर, ट्रैप, तीर हिल्टाक्लोर, ई.सी.) 1.2 लीटर प्रति एकड़ 60 किलोग्राम सूखी रेत में मिलाकर पौध रोपण के 2-3 दिन उपरांत 4-5 सैं.मी. गहरे पानी में एकसार बिखेर दें। इसके अतिरिक्त अन्य खरपतवार-नाशकों का प्रयोग भी समग्र सिफारिशों के अनुरूप करें।

रोपाई के (6 से 10 दिन) बाद जब पौधे ठीक प्रकार से जड़ पकड़ लें तो पानी रोक लें ताकि पौधों की जड़ें विकसित हो जाएं। एक बार में 5-6 सैं.मी. से अधिक गहरा पानी न लगाएं। धान की जड़ की सूण्डी के आक्रमण से पौधे पीले हो जाते हैं व फुटाव भी कम होता है जिससे पौधे छोटे भी रह जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए 10 किलोग्राम कार्बोफ्यूरान 3-जी या 4 किलोग्राम फोरेट (थिमेट) 10-जी प्रति एकड़ डालें। यदि पत्ता लपेट सूण्डी का आक्रमण हो तो 200 मि.ली. मोनोक्रोटोफास 36 एस.एल. या 400 मि.ली. क्विनलफॉस 20 ए.एफ. को 200 लीटर पानी में प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें।

कपास

यदि कपास की बिजाई किसी कारण देर से की हो तो जुलाई के पहले सप्ताह में फसल को पानी लगाएं तथा फालतू पौधों को निकाल दें जिससे कि एक कतार में पौधे से पौधे का फासला 30 सैं.मी. रह जाए। कोणदार धब्बों से बचाव हेतु जुलाई के पहले सप्ताह में 6-8 ग्राम स्ट्रैप्टोसाइक्लिन व कॉपर ऑक्सीक्लोराईड (600-800 ग्राम प्रति एकड़) को 150-200 लीटर पानी में मिलाकर 15-20 दिन के अंतर पर लगभग 4 छिड़काव करें। नरमा में नाइट्रोजन 35 कि.ग्रा., फास्फोरस 12 कि.ग्रा., देसी कपास में नाइट्रोजन 20 कि.ग्रा. व संकर कपास में नाइट्रोजन 70 कि.ग्रा., फास्फोरस 24 कि.ग्रा. व पोटाश 24 कि.ग्रा. प्रति एकड़ की सिफारिश है। नाइट्रोजन की खाद आधी बौकी आने (जुलाई-अंत) के समय तथा आधी फूल आने के समय डालें। संकर किस्मों में इन दोनों समय पर नाइट्रोजन 1/3 की दर से डालनी चाहिए। बेहतर होगा कि सारा फास्फोरस व 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट बिजाई के समय डालें।

2, 4-डी कपास के लिए घातक

इसके प्रभाव से कपास की पत्तियों में बारीक कटाव (हथेली जैसा) आ जाता है, फूल गिर जाते हैं और टिण्डे नहीं बनते। इसलिए ध्यान रखें कि जिस स्प्रेयर से 2, 4-डी प्रयोग में लाया गया हो उसे बीमारी व कीड़े मारने वाली दवाओं के छिड़काव के लिए प्रयोग में न लाएं। साथ ही 2, 4-डी का संपर्क कपास की फसल में प्रयोग में लाए जाने वाले कीटनाशकों और फफूंदनाशकों के साथ न होने पाए। कीट या फफूंदनाशकों के छिड़काव के लिए घोल बनाने से पूर्व बोतल या टीन का लेबल ध्यान से देख लें। 2, 4-डी से प्रभावित पौधों की समस्या हो जाने पर प्रभावित कोंपलों को 15 सैं.मी. काट दें और इसके बाद 2.5 प्रतिशत यूरिया तथा 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट के घोल का छिड़काव करें। खरपतवार नियंत्रण के लिए पहली गोड़ाई पहली सिंचाई से पहले कसौला से करें। बाद में हर सिंचाई के बाद समायोज्य कल्टीवेटर से निराई-गोड़ाई करें। पहली सिंचाई जितनी देर से की जाए अच्छी है। आमतौर पर बिजाई के 40-45 दिन बाद सिंचाई करें।

कपास में बिजाई के 40-45 दिनों के बाद सूखी गुड़ाई के बाद स्टोम्प 30 ई.सी. की 1.25 लीटर मात्रा प्रति एकड़ को 200-250 लीटर पानी में घोल से उपचार के बाद सिंचाई करने से भी वार्षिक खरपतवारों का उचित नियन्त्रण हो जाता है।

हरा तेला की रोकथाम के लिए एक से दो छिड़काव 40 मि.ली. कोन्फीडोर या 40 ग्रा. एकतारा या 250-350 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. को 120 से 150 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ 15 दिन के अंतर पर छिड़कें। पहला छिड़काव तब करें जब 20 प्रतिशत पूरे विकसित पत्ते किनारों से पीले होकर मुड़ने लगें। सफेद मक्खी का भी यही इलाज है।

यदि बालों वाली सूण्डी, पत्ता लपेट सूण्डी, कुब्बड़ कीड़े या चित्तीदार सूण्डी का भी आक्रमण जुलाई अंत से मध्य अगस्त तक हो तो 600 मि.ली. क्विनलफॉस (एकालक्स) 25 ई.सी. या 75 मि.ली. स्पाईनोसैड (ट्रैसर) 75 एस सी या 1 लीटर नीम (अचूक निम्बीसीडीन) का प्रयोग करें। मीली-बग से बचाव के लिए खेतों के आसपास उगे खरपतवारों, विशेषकर कांग्रेस घास, कंघी बूटी, जंगली भ्रुट आदि को काट कर जला दें।

मूँगफली

मूँगफली की बिजाई इस माह के मध्य तक पूरी कर लें। पंजाब मूंगफली नं. 1, एम एच-4 की बिजाई क्रमश: 30×22.5 व 30-15 सैं.मी. पर करें। बीज 'केरा' विधि से खूड़ों में 5 सैं.मी. की गहराई पर डालें। पंजाब मूंगफली नं. 1 के लिए 34 किलोग्राम व एम एच-4 के लिए 32 किलोग्राम गिरी एक एकड़ के लिए काफी होगी। बोने से पूर्व स्वस्थ गिरियों का कैप्टान या थाइरम 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज से उपचार करें। सफेद लट व दीमक से फसल को बचाने के लिए 15 मि.ली. क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. या क्विनलफॉस 25 ई.सी. प्रति किलोग्राम बीज का बुवाई से 4-5 घंटे पहले उपचार करें। मूंगफली में 6 किलोग्राम नाइट्रोजन (13 कि.ग्रा. यूरिया), 20 किलोग्राम फास्फोरस (125 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट), 10 किलोग्राम पोटाश (16 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश) व 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट/एकड़ बिजाई के समय ड्रिल करें। मूंगफली में जिप्सम का प्रयोग लाभदायक पाया गया है।

बिजाई के 21 व 42 दिन पर निराई-गुड़ाई द्वारा खरपतवार नियंत्रण करें। पहली सिंचाई 30-35 दिन बाद तथा एक सिंचाई फूल आने पर करें।

मूँग, उड़द व लोबिया

मूँग मुस्कान, सत्या, बसंती, एम एच 421, एम एच 318, उड़द यू एच-1 तथा लोबिया एफ एस-68, एच सी 46 किस्में बोएं। मूँग व उड़द के लिए 6 से 8 किलोग्राम तथा लोबिया के लिए 12 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ डालें और बीज गलन व पौध अंगमारी से बचाव हेतु बीज में 4 ग्राम थाइरम प्रति किलोग्राम बीज मिलाएं। बिजाई जुलाई के पहले पखवाड़े तक 30 व 45 सैं.मी. (क्रमश: सिंचित व असिंचित क्षेत्र के लिए) की दूरी पर कतारों में करें। दो बार निराई-गोड़ाई करें। इन सभी दलहनी फसलों में बिजाई के समय 6-8 किलोग्राम नाइट्रोजन (13-17.5 कि.ग्रा. यूरिया) प्रारंभिक मात्रा के रूप में तथा 16 किलोग्राम फास्फोरस (100 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) प्रति एकड़ खेत में पोर दें। सभी फसलों को राईजोबियम के टीके से उपचारित करके बोएं।

सोयाबीन

सोयाबीन की पी के-416, पी के-564 व पी के-472 किस्में हरियाणा के लिए उत्तम हैं। इसकी बिजाई जून के आखिरी या जुलाई के प्रथम सप्ताह में करें। राईजोबियम के टीके से उपचारित 30 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ डालें। कतार का फासला 45 सैं.मी. रखकर ढाई सैं.मी. गहरी बिजाई करें। अधिक उपज पाने के लिए 10 किलोग्राम नाइट्रोजन (22 कि.ग्रा. यूरिया) तथा 32 किलोग्राम फास्फोरस (200 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) प्रति एकड़ बिजाई के समय डालें। 15 व 35 दिन बाद इसकी निराई-गोड़ाई करें।

अरहर

अरहर की कम समय में पकने वाली यू पी एस-120 या मानक या पारस की बिजाई शीघ्र ही जुलाई के प्रथम सप्ताह में पूरी कर लें। एक एकड़ के लिए लगभग 5-6 किलोग्राम बीज डालें। इन सभी किस्मों की बिजाई कतारों में 40 सैं.मी. की दूरी रखकर करें। बीज को राईजोबियम के टीके से उपचारित करके ही बोएं तथा 8 किलोग्राम नाइट्रोजन (17.5 कि.ग्रा. यूरिया) व 16 कि.ग्रा. फास्फोरस (100 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) प्रति एकड़ बिजाई के समय डालें।

गन्ना

चोटी (अगोला) बेधक कीट के लिए जून में कीटनाशक न डाली हो तो अब तुरंत 13 किलोग्राम फ्यूराडान 3-जी या 8 किलोग्राम फोरेट 10-जी को खाद के साथ मिलाकर प्रति एकड़ डालें व इसके तुरंत बाद हल्की सिंचाई करें। यदि नाइट्रोजन खाद की शेष आधी मात्रा लगानी रहती है तो उसे पूरा कर लें। बसन्तकालीन फसल में 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (130 कि.ग्रा. यूरिया), 20 कि.ग्रा. फास्फोरस (125 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) व 20 कि.ग्रा. पोटाश (35 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश) बिजाई के समय, 1/3नाइट्रोजन दूसरी तथा 1/3 नाइट्रोजन चौथी सिंचाई के साथ डालें।

तिल

हरियाणा तिल नं. 1 व हरियाणा तिल नंबर 2 को जुलाई के पहले पखवाड़े में 4-5 सैं.मी. गहराई व 30 सैं.मी. का फासला रखकर खूडों में बोएं व पौधे से पौधे का फासला 15 सैं.मी. रखें। दो किलोग्राम प्रति एकड़ बीज प्रयोग करें। बिजाई से पूर्व प्रति किलोग्राम बीज में 3 ग्राम कैप्टान या थाइरम मिलाकर बिजाई करें। कम उपजाऊ व हल्की ज़मीन में 15 किलोग्राम नाइट्रोजन (35 कि.ग्रा. यूरिया) व 10 टन गोबर की सड़ी खाद प्रति एकड़ बिजाई से पहले ड्रिल करें।

सब्जियों में

बैंगन

बैंगन की पिछली फसल के कच्चे फलों को तोड़कर बाज़ार बेचने के लिए भेज दें। फलों को तोड़ने के लिए किसी चाकू या तेज़ धार वाले औज़ार का प्रयोग करें जिससे कि तोड़ते समय पौधों को क्षति न हो। आवश्यकता होने पर सिंचाई करें। फल व तना छेदक कीड़े के लगने पर ग्रसित फलों को तोड़कर नष्ट कर दें व इसके बाद 75 ग्राम स्पाइनोसेड (ट्रेसर 45 एस.सी.) को प्रति एकड़ 80 लीटर पानी में घोलकर 15 दिन के अंतर पर तीन छिड़काव करें। दवा प्रयोग करने के बाद फलों को 8-10 दिन तक खाने के काम में न लाएं।

वर्षा ऋतु की फसल के लिए खेत की तैयारी करें। इसकी उन्नत किस्मों, बी आर-112, हिसार श्यामल व हिसार प्रगति को प्रयोग में लाएं। नर्सरी में पौध इस महीने तक तैयार हो जाएगी। खेत को तैयार कर क्यारियों में बांट लें।

एक एकड़ खेत में लगभग 10 टन गोबर की खाद बिखेर दें और जुताई कर दें। पौधरोपण से पहले 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (87 कि.ग्रा. यूरिया), 20 कि.ग्रा. फास्फोरस (125 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) तथा 10 कि.ग्रा. पोटाश (17 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश) प्रति एकड़ दें। कतारों का फासला लंबी किस्मों में 60 सैं.मी. तथा गोल किस्मों में 75 सैं.मी. रखें। पौधे से पौधे की दूरी 60 सैं.मी. रखें। पौधरोपण के बाद सिंचाई अवश्य करें। विषाणु रोग से बचाव के लिए शुरू से ही कीटनाशक दवाएं प्रयोग में लें।

हरा तेला, सफेद मक्खी, गोभ व फल छेदक कीड़े आदि बैंगन की फसल में नुकसान पहुंचाते हैं। रस चूसने वाले कीटों के नियंत्रण के लिए 300-400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें। फल लगने शुरू होते ही बारी-बारी से सिन्थेटिक पाईरिथ्राएड (80 मि.ली. फैनवेलरेट) 20 ई.सी. या 200 मि.ली. डेल्टामैथ्रीन 2.8 ई.सी. को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें ताकि फल छेदक का नियंत्रण भी हो जाए। सिन्थेटिक पाइरेथ्राइड का छिड़काव 21 दिन तथा दूसरे कीटनाशकों का 15 दिन के अंतर पर दोहराएं।

फूलगोभी अगेती

इसके लिए एक एकड़ खेत में लगभग 20 टन गोबर की सड़ी खाद मिलाएं तथा पौधरोपण से पहले 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (110 कि.ग्रा. यूरिया), 20 कि.ग्रा. फास्फोरस (125 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) तथा 20 कि.ग्रा. पोटाश (35 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश) की दर से मिलाकर खेत को समय पर तैयार करें। अगेती फूलगोभी (पूसा कातकी) की पौध इस माह तैयार हो जाएगी। अच्छा होगा कि हल्की डोलियां बना लें जिससे कि अधिक वर्षा में पौधे खराब न हों। पौधरोपण कतारों में 45 सैं.मी. की दूरी पर करें और पौधे की दूरी 30 सैं.मी. रखें। पौधरोपण शाम के समय करें तो उचित रहेगा। वर्षा न होने पर सिंचाई करें।

मिर्च

मिर्च की गर्मी की फसल की तुड़ाई करके बाज़ार भेजें। आवश्यकता होने पर सिंचाई करें। हरा तेला, सफेद मक्खी, माईट तथा रस चूसने वाले कीड़ों की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ शुरू से ही 15 दिन के अंतर पर छिड़कें। इस दवा से विषाणु रोग की रोकथाम हो सकती है क्योंकि सफेद मक्खी रोग फैलाती है। रोगग्रस्त पौधों को निकाल कर नष्ट कर दें।

मिर्च की पौध इस माह तैयार हो जाएगी। अत: रोपाई का प्रबंध करें। मिर्च के खेत की तैयारी के लिए 10 टन गोबर की खाद प्रति एकड़ की दर से बिखेर दें। खेत को उचित नाप की क्यारियों में बांट लें। पौधरोपण से पहले 25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (55 कि.ग्रा. यूरिया), 12 कि.ग्रा. फास्फोरस (75 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) और 12 कि.ग्रा. पोटाश (20 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश) प्रति एकड़ की दर से खेत में मिला दें। तैयार खेत में शाम के समय पौधरोपण करें। पौधरोपण के बाद सिंचाई अवश्य करें।

भिण्डी

भिण्डी की गर्मी की फसल को हरा तेला से बचाने के लिए एकटारा 25 डब्ल्यू जी (थायामिथोक्सम) नामक दानेदार कीटनाशक 40 ग्राम दवा को 150-200 लीटर पानी में घोलकर एक एकड़ में छिड़काव करें। 20 दिन के अंतराल पर यदि आवश्यकता हो तो छिड़काव दोहराएं। भिण्डी में फल लगने पर जो खाने के लिए उगाई गई हो उसमें 300-500 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. 200-300 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

वर्षाकालीन फसल के लिए यदि बिजाई जून माह में न की हो तो अब करें। एक एकड़ खेत में 10 टन गोबर की खाद डालकर जुताई करें और बिजाई से पहले 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (87 कि.ग्रा. यूरिया) तथा 24 कि.ग्रा. फास्फोरस (150 कि.ग्रा. सुपरफास्फेट) प्रति एकड़ की दर से दें। पोटाश खाद आवश्यकता पड़ने पर डालें। खेत को क्यारियों में बांट लें। वर्षा उपहार या हिसार उन्नत किस्मों को प्रयोग में लाएं। एक एकड़ खेत की बिजाई के लिए 5-6 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होगी। बिजाई करने से पहले बीजोपचार बाविस्टिन (2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज) नामक दवा से कर लें। बिजाई कतारों में लगभग 45-60 सैं.मी. की दूरी पर करें तथा पौधों की दूरी 30 सैं.मी. रखें। आवश्यकतानुसार सिंचाई करें तथा प्रारंभ से ही खरपतवारों पर नियंत्रण रखें।

कद्दू जाति की सब्जियां

तरबूज़ व खरबूजे की फसल की तुड़ाई कर ली होगी। अत: खेत को दूसरी फसलों के लिए तैयार करें। इस जाति की और सब्जियों, जैसे लौकी, करेला, टिण्डा, तोरी, ककड़ी आदि के कच्चे फलों को तोड़कर नियमित रूप से बाज़ार भेजें। आवश्यकता होने पर सिंचाई करें।

गर्मी की पुरानी फसल को फल छेदक मक्खी से बचाने के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. और 1.25 कि.ग्रा. गुड़ को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। लालड़ी का आक्रमण हो तो 25 मि.ली. साइपरमेथ्रिन 25 ई.सी. या 30 मि.ली. फेनवेलरेट 20 ई.सी. को 100 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ की बेलों पर छिड़कें। सफेद चूर्णी रोग लगने पर 800 ग्राम घुलनशील गंधक अथवा 200 मि.ली. कैराथेन का प्रति एकड़ की दर से खेत पर छिड़काव करें। गर्मी की फसल समाप्त होने पर जुताई करें और अन्य फसलें लगाने की तैयारी करें।

वर्षाकालीन कद्दू जाति की सब्जियां लगाने के लिए खेत की तैयारी करें। खेत तैयार करते समय 6 टन गोबर की खाद, 8 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (15 कि.ग्रा. यूरिया), 10 कि.ग्रा. फास्फोरस (60 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) तथा 10 कि.ग्रा. पोटाश (16 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश) प्रति एकड़ की दर से दें।

बिजाई नालियों के दोनों ओर करें। किस्म के चुनाव, बीज की मात्रा तथा बीजने की दूरी निम्नलिखित तालिका में दी गई है।

फसल का नाम	किस्म	बीजने की दूरी (सैं.मी.)	
		कतारों में	पौधों में
घीया	पूसा/समर प्रौलिफिक लोंग, पूसा समर प्रौलिफिक राउण्ड एवं जी एच 22	200	60
करेला	कोयम्बटूर लांग व पूसा दो-मौसमी	150	45
तोरी	पूसा चिकनी व गुच्छेदार	200	60
(चिकनी)	पूसा नसदार (धारीदार)	200	60
खीरा	जैपनीज़ लांग ग्रीन या स्थानीय	100-150	60
टिण्डा	हिसार सलैक्शन, बीकानेर ग्रीन व हिसार टिण्डा	150	60

खीरा के लिए लगभग एक कि.ग्रा. बीज तथा अन्य फसलों के लिए लगभग (1½-2) कि.ग्रा. बीज की प्रति एकड़ बिजाई के लिए ज़रूरत

होगी। फसलों की सिंचाई आवश्यकतानुसार करें तथा खरपतवारों को निकालते रहें।

अरबी

अरबी की फसल में आवश्यकता पड़ने पर सिंचाई करें, खरपतवार निकालें तथा मिट्टी चढ़ाएं। खड़ी फसल में नाइट्रोजन वाली खाद (यूरिया) बिजाई के लगभग 7-8 सप्ताह बाद डालकर मिट्टी चढ़ा दें। बरसात की फसल की बिजाई का समय जून-जुलाई माह है। एक एकड़ खेत में बिजाई करने के लिए लगभग 300-400 कि.ग्रा. कन्दों की आवश्यकता होती है। कन्दों की बिजाई करने की दूरी 45-60 सैं.मी. कतारों में तथा 30 सैं.मी. पौधों में रखते हैं।

पालक

पालक की पहले लगाई गई फसल की आवश्यकता होने पर सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें। जब पालक काटने लायक हो जाए तो उसके पत्तों को काटकर बंडलों में बांधें तथा बाज़ार भेजें। नई फसल के लिए खेत की तैयारी करें तथा बिजाई करें। इसकी उन्नत किस्में, जौबनेर-ग्रीन, आलग्रीन या एच एस 23 का प्रयोग करें। इसके लिए 8 कि.ग्रा. बीज एक एकड़ में बिजाई करने के लिए काफी होगा तथा खेत तैयार करते समय लगभग 20 टन गोबर की सड़ी खाद, 32 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (70 कि.ग्रा. यूरिया) तथा 16 कि.ग्रा. फास्फोरस (100 कि.ग्रा.सिंगल सुपर फास्फेट) प्रति एकड़ खेत में मिलाएं तथा उचित नाप की क्यारियों में खेत बांट लें। बिजाई कतारों में 15-20 सैं.मी. की दूरी पर करें।

शकरकन्दी

शकरकन्दी की उन्नत किस्में पूसा सफेद व पूसा लाल हैं। शकरकन्दी की फसल की काट को अप्रैल से जुलाई तक खेत में लगाते हैं। एक एकड़ खेत में लगभग 24000 से 28000 बेलों की काटों की आवश्यकता होती है। प्रत्येक काट लगभग 30-40 सैं.मी. लंबी होनी चाहिए। लगाने की दूरी कतारों में 60 सैं.मी. तथा पौधे से पौधे की दूरी 30 सैं.मी. रखें। खेत तैयार करते समय 10 टन गोबर की खाद, 32 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (70 कि.ग्रा. यूरिया), 36 कि.ग्रा. फास्फोरस (225 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) तथा 32 कि.ग्रा. पोटाश (55 कि.ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश) प्रति एकड़ की दर से काटें लगाने से पहले दें तथा क्यारियां बना लें। खड़ी फसल में 32 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (70 कि.ग्रा. यूरिया) की आधी-आधी मात्रा दो बार देने की आवश्यकता होती है। यदि फसल पहले लगाई जा चुकी है तब आवश्यकता होने पर सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें। लवणीय या क्षारीय भूमि में शकरकन्दी की खेती नहीं की जा सकती।

खरीफ प्याज़

नर्सरी की देखभाल करें, खरपतवार निकालें, सिंचाई करें तथा अधिक वर्षा से बचाव करें। आर्द्रगलन की समस्या होने पर 0.2 प्रतिशत कैप्टान के घोल से नर्सरी की सिंचाई करें। खेत की तैयारी भी शुरू करें।

मूली

यदि आपने मूली की अगेती किस्म, पूसा चेतकी की बिजाई पहले कर रखी है तो आवश्यकता होने पर सिंचाई करें। यदि नहीं तो इसकी बिजाई इस माह भी कर सकते हैं। खरपतवार निकालें व जड़ों पर मिट्टी चढ़ाएं। तैयार जड़ें उखाड़कर तथा धोकर बाज़ार भेजें। चेपा का प्रकोप होने पर 250-400 मि.ली. डाईमेथोएट 30 ई.सी. को 250-400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। पूसा चेतकी की फसल लगभग 40 दिनों में तैयार हो जाती है। इसकी बिजाई के लिए लगभग 4-5 कि.ग्रा. बीज की एक एकड़ खेत के लिए आवश्यकता होगी। नई फसल लगाने के लिए खेत तैयार करते समय लगभग 20 टन गोबर की खाद, 24 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (52 कि.ग्रा. यूरिया) तथा 12 कि.ग्रा. फास्फोरस (75 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) प्रति एकड़ डालें। बिजाई कतारों में 30-45 सैं.मी. की दूरी पर करें तथा पौधे से पौधे की दूरी 5-8 सैं.मी. रखें। उचित होगा कि बिजाई हल्की-हल्की डोलियों पर करें। आवश्यकता होने पर सिंचाई करें तथा खरपतवार निकालें।

अन्य सब्जियां

अन्य सब्जियों, जैसे ग्वार, लोबिया आदि फसलों की आवश्यकता होने पर सिंचाई करें तथा नर्म फलियों को तोड़कर बाज़ार भेजें। ग्वार की उन्नत किस्म पूसा नवबहार प्रयोग करें तथा बिजाई की दूरी 30-45 सैं.मी. कतारों में तथा 15-20 सैं.मी. पौधों में रखें। एक एकड़ के लिए 6 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होगी। लोबिया की उन्नत किस्में पूसा बरसाती या पूसा दो-फसली प्रयोग करें तथा बिजाई की दूरी 30-45 सैं.मी. कतारों में तथा 15-20 सैं.मी. पौधों के बीच रखें। एक एकड़ के लिए लगभग 8-10 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होगी। हानिकारक कीड़ों से रक्षा के लिए कीटनाशक दवाओं का प्रयोग करें। दवा प्रयोग के बाद एक सप्ताह तक फसल को खाने के काम में न लें।

फलों में

अंगूर

फल तोड़ने के बाद जो बढ़वार आती है उसको ½-¾ मीटर रखने के बाद सिरे से तोड़ते रहें। नई बेलों में 25-50 ग्राम यूरिया प्रति बेल डाल दें और अगर वर्षा न हो तो खाद डालने के बाद सिंचाई अवश्य करें। खरपतवार नियंत्रण के पश्चात नमी को बनाए रखने के लिए काली पॉलीथीन शीट बिछाएं।

थ्रिप्स व हरा तेला के रस चूसने से पौधा पीला व भूरा-लाल हो जाता है। इनकी रोकथाम के लिए आधा लीटर मैलाथियान 50 ई.सी. या 150 मि.ली. फैनवालरेट 20 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। अंगूर में एन्थ्रेक्नोज़ बीमारी की रोकथाम के लिए बाविस्टिन 0.2 प्रतिशत का छिड़काव जुलाई के अंतिम सप्ताह में करें।

संगतरा, माल्टा इत्यादि

हर सप्ताह सिंचाई का प्रबंध करें।

इन पौधों को तेला (सिल्ला), पौधों में सुरंग बनाने वाले कीट, सफेद मक्खी और पत्ते खाने वाली सूण्डी से बचाने के लिए 625 मि.ली. रोगोर 30 ई.सी. या 500 मि.ली. मोनोक्रोटोफोस 36 डब्ल्यू एस सी को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

बरसात की पहली बौछार के तुरंत बाद 0.3 प्रतिशत कॉपर-ऑक्सीक्लोराइड का छिड़काव करें।

फलों को गिरने से रोकने के लिए पेड़ों पर 6 ग्राम 2,4-डी, 3 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट, 12 ग्राम ओरियोफिन्जिन और 1.5 कि.ग्रा. चूने को 550

लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ जून-जुलाई में पहला छिड़काव व दूसरा छिड़काव सितम्बर के दूसरे सप्ताह में करें। अगर बाग के पास कपास खड़ी है तो 2,4-डी का छिड़काव न करें। इस परिस्थिति में 20 मि.ग्रा. एन. ए. ए. को प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। अगर पौधों में जस्ते की कमी हो तो 500 मि.ग्रा. प्लान्टोमाइसिन और 2 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का प्रति लीटर पानी की दर से जुलाई, अक्तूबर, दिसम्बर व फरवरी में छिड़काव करें।

बेर

प्रति पौधा 50 किलोग्राम गोबर की खाद अगर काट-छांट के बाद न डाली हो तो इस माह में ज़रूर डालें और 625 ग्राम यूरिया व 2.5 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट भी प्रति पेड़ डालकर गुड़ाई करें और फिर सिंचाई करें। इस महीने देसी पौधों पर चस्पा/पैच विधि द्वारा पौधे तैयार कर सकते हैं।

अमरूद

750 ग्राम यूरिया, 625 ग्राम सुपर फास्फेट, 250 ग्राम सल्फेट ऑफ पोटाश एवं बाकी आधी बची खाद इसी माह में डालकर अच्छी तरह मिलाकर सिंचाई करें। जो कीड़े अंगूर में लगते हैं वही अमरूद में लगते हैं। इसलिए अंगूर वाले कार्यक्रम को अपनाएं।

आम

फल तोड़कर मंडी भेजना शुरू कर दें। फल तोड़ते समय यह ध्यान रखें कि 'नाकू' फल के साथ अवश्य रखें।

अन्य फल

आड़ू, अलूचा और नाशपाती में सप्ताह के अंतराल पर, हल्की सिंचाई अवश्य करें। बाग के इर्द-गिर्द पौधों को गर्म एवं शुष्क हवाओं से बचाने के लिए शीशम, जामुन, पोपलर व सफेदा व करोंदा आदि के पेड़ लगाएं।

जब बगीचों में फल लग रहे हों तब उनकी कतारों के बीच फसल नहीं बोनी चाहिए लेकिन जिन बगीचों में पेड़ अभी छोटे हों और फल न लगे हों वहां पंक्तियों के बीच उड़द, लोबिया, मूंग, ग्वार आदि फसलें बोई जा सकती हैं। इन फसलों को ज़रूरत के अनुसार खाद की अतिरिक्त मात्रा भी देनी चाहिए। यदि ज़मीन कमज़ोर है तो हरी खाद के लिए ग्वार या ढैंचा अवश्य बीजें। ढैंचा को बिजाई के 45 दिन बाद जुताई करके मिट्टी में अच्छी तरह मिला दें।

नोट : किसान बागों में रोटावेटर को न चलाएं। रोटावेटर की जुताई से पौधों की जड़ों को नुकसान पहुंचता है और जड़ें कट जाती हैं और पौधे को पूरी खुराक नहीं मिलती व धीरे-धीरे पौधे सूखने लगते हैं।

पशुओं में

गाय-भैंस

बरसात के मौसम में बारिश के कारण व उच्च तापमान के कारण वातावरण में आर्द्रता बढ़ जाती है। आर्द्रता के कारण पशु अपने आप को तनाव में महसूस करते हैं।

वर्षा शुरू होने पर गाय-भैंसों में छूत के रोग हो जाते हैं, विशेषकर गलघोंटू और फड़ सूजन की बीमारियां पशुओं को अधिकतर लग जाती हैं। यदि आपने अपने पशुओं को गलघोंटू या फड़ सूजन की बीमारी से बचाव के टीके अभी तक न लगवाए हों तो शीघ्र ही लगवा लें। ये टीके पशु चिकित्सालय में नि:शुल्क लगाए जाते हैं। यदि आपका पशु बीमार है तो उसे दूसरे पशुओं से अलग कर लें और उसका इलाज कराएं। जिन पशुओं की छूत की बीमारी से मृत्यु हो जाए, उन्हें गांव से बाहर गड्ढे में चूना आदि डालकर दबाएं। उनके मल-मूत्र को भी गांव के बाहर गड्ढे में डालकर दबा दें या जला दें तथा गड्ढे के आसपास तथा ऊपर चूना डाल दें।

सायं को जब पशु घर पर आते हैं तो ध्यान से देखें कि वे चारा ठीक प्रकार से खा रहे हैं या नहीं। यदि पशु चारा, दाना न खाए तो यह इस बात का लक्षण है कि वह बीमार है। उस समय आप निकटतम पशु-चिकित्सक से मिलें और पशु का इलाज तुरंत कराएं।

बरसात के मौसम में बाड़े में पानी नहीं भरना चाहिए तथा बाड़े की नालियां साफ सुथरी रहनी चाहिएं। बाड़े की सतह सूखी व फिसलन वाली नहीं होनी चाहिए। लगातार गीले होने के कारण पशुओं के खुरों में संक्रमण होने की संभावना अधिक रहती है, इसलिए सप्ताह में एक या दो बार हल्के लाल दवाई के घोल से खुरों को साफ करना चाहिए।

इस महीने के आखिर में भैंसों का ब्यांत शुरू हो जाता है। इसलिए किसान भाई इनकी तरफ विशेष ध्यान दें।

पशुओं से पूरी मात्रा में दूध लेने के लिए यह अनिवार्य है कि इनकी खुराक में हरे चारे का प्रयोग किया जाए। दाने में मिलाकर पशुओं को 50 ग्राम खनिज मिश्रण जोकि आई.एस.आई. मार्का हो तथा नमक देना चाहिए। यह खनिज मिश्रण पशु पोषण विभाग, लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय से भी प्राप्त किया जा सकता है।

ब्याने वाली गाय-भैंस की खुराक का विशेष ध्यान रखें। खुराक ऐसी हो जो कब्ज़ न करे। जो गायें, भैंसें ब्या गई हों उन्हें उनकी दूध की मात्रा के अनुसार दाना दें। दूध देने वाली गायों और भैंसों को प्रति 2.5 कि.ग्रा. व 2 किलोग्राम दूध के लिए एक किलोग्राम दाने का मिश्रण दें। दाने की मात्रा चारे की पौष्टिकता व उपलब्धि के हिसाब से कम व अधिक कर सकते हैं।

नवजात बछड़े-बछड़ियों तथा कट्टे-कट्टियों को साफ स्थान पर रखें। गंदगी के कारण उनका सूण्ड सूज जाता है और साथ ही बुखार आता है। टांगों के जोड़ सूज जाते हैं। दस्तों की भी शिकायत हो जाती है। इस बीमारी को सूंड सूजने की बीमारी भी कहते हैं। इससे बचाने के लिए इनके लटकते हुए सूण्डों को पैदा होते ही ऊपर से डेढ इंच छोड़ कर काट देना चाहिए और कटे हुए स्थान पर टिंचर आयोडीन लगाकर साफ पट्टी बाधें। नवजात बच्चे को आधा घंटे के अंदर ही खीस पिलाएं ताकि उसकी बीमारियों से बचाव की क्षमता बढ़ जाए तथा बीमारियों से बचाव हो सके। नवजात पशु को फर्श की फिसलन तथा वातावरण के तनाव से बचाना चाहिए।

पशुओं को बरसात में गंदा पानी पीने से रोकना चाहिए अन्यथा पेट में कीड़े हो जाते हैं और इसके कारण उनकी दूध देने की क्षमता भी घट जाती है तथा पशुओं में अन्य बीमारियां भी हो सकती हैं। पेट के कीड़ों की रोकथाम के लिए पशु चिकित्सक की सलाह से पेट के कीड़े मारने की दवा समय पर दें।

भेड़

भेड़ों में आंतों के सूजने से दस्त लग जाते हैं। इसे एनटेरोटाक्सीमिया कहते हैं। इस रोग से बचाने के लिए अपनी भेड़ों को इस बीमारी से बचाव का टीका लगवाएं। बरसात में अधिकतर भेड़ों के पेट में कीड़े हो जाते हैं। इन कीड़ों के कारण इनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और कई प्रकार के रोग लग जाते हैं। भेड़ों को स्वस्थ रखने के लिए अपने पशु-चिकित्सक की सलाह से उन्हें नियमित

रूप से कृमिनाशक दवा पिलाते रहना चाहिए। भेड़ को पीने के लिए साफ एवं स्वच्छ जल उपलब्ध करायें तथा संपूर्ण आहार दें।

कुक्कुट

जिन चूज़ों की आयु 6 से 8 सप्ताह तक की हो गई हो, उन्हें रानीखेत से बचाव का टीका (आर.बी. 2) लगवा लें। इन चूज़ों को फाऊल पॉक्स की बीमारी से बचाने के लिए भी टीका लगवा लें।

चूज़ों में खूनी दस्त रोकने के लिए उनकी खुराक में कॉक्सीडोयोस्टेट मिलाकर दें। ऐसे कॉक्सीडोयोस्टेट जो आसानी से मिल सकते हैं, वे हैं-बाईप्रान, एमप्रोल आदि। बाईप्रान तथा एमप्रोल को एक क्विंटल खुराक में 25 ग्राम तक मिलाया जाता है। ऐसी खुराक खिलाने से खूनी दस्त की बीमारी से बचाव हो सकता है।

चूज़ों का आवास हवादार होना चाहिए। इसमें बरसात के पानी का आवागमन नहीं होना चाहिए। वातावरण के तनाव से बचाव हेतु पंखों का इस्तेमाल किया जा सकता है।

घर-आंगन में

गृह विज्ञान

5 जून का दिन प्रत्येक वर्ष विश्व वातावरण दिवस के रूप में मनाया जाता है। अत: इस दिन ग्रामवासियों को वातावरण की स्वच्छता के बारे में जागरूक करना अति आवश्यक है। स्वच्छता लोगों की मूलभूत आवश्यकता है क्योंकि इसका संबंध खाद्य स्वच्छता, व्यक्तिगत स्वच्छता, घरेलू तथा पर्यावरण की स्वच्छता से है। स्वच्छता की आदतों से जल और मृदा के प्रदूषण पर रोक लगती है। जिससे बीमारियां नहीं फैल पातीं। घरों में शौचालय अवश्य बनाए जाएं। यदि किसी कारणवश शौचालय प्रत्येक घर में नहीं है तो सार्वजनिक शौचालय गांव के उपयुक्त स्थान पर बनवाए जाएं तथा इनके रख-रखाव की समुचित व्यवस्था की जाए ताकि स्वच्छ भारत मिशन के तहत खुले में शौच मुक्त भारत का सपना साकार हो सके।

स्वच्छता से तात्पर्य है कि तरल तथा ठोस अपशिष्ट का ठीक ढंग से निपटारा, खाद्य स्वच्छता, व्यक्तिगत, घरेलू तथा वातावरण की स्वच्छता भी शामिल हैं। ठीक स्वच्छता न केवल सामान्य स्वास्थ्य की दृष्टि से ज़रूरी है बल्कि इसका व्यक्तिगत तथा सामाजिक ज़िन्दगी में भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। पानी की स्वच्छता के लिए जनता वाटर फिल्टर का इस्तेमाल करें जिसको घर पर बनाना बहुत ही सरल एवं सस्ता है। वातावरण की स्वच्छता के लिए पानी सोखने वाले गड्ढे, शौच के सही निपटारे के लिए गड्ढे वाले शौचालय का इस्तेमाल करें। हवा की शुद्धता एवं भूमि के संरक्षण के लिए वृक्षारोपण करें।

स्वास्थ्य शिक्षा के लिए ग्रामीण जनता को स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी विषयों की जानकारी दी जानी चाहिए। इसके लिए व्यक्तिगत एवं सामूहिक सम्पर्क वार्ताएं, रेडियो, टेलिविज़न, स्वास्थ्य प्रदर्शनी आदि के माध्यम से गांवों में स्वच्छ वातावरण पैदा किया जाना चाहिए ताकि ग्रामीणों का स्वास्थ्य सुधर सके और वह रोगमुक्त होकर खुली हवा में सांस ले सकें।

(पृष्ठ 12 का शेष)

चलते रीसाइकिल हो पाता है जिसका सीधा प्रभाव पर्यावरण में अपरिवर्तनीय क्षति और उद्योग में काम करने वाले लोगों के स्वास्थ्य पर पड़ता है। ई-कचरे का 95% असंगठित क्षेत्र और इस बाज़ार में स्क्रैप डीलरों द्वारा प्रबंधित किया जाता है जो इसे रिसाइकिल करने के बजाय उत्पादों को तोड़ कर फेंक देते हैं। इन इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों से घटकों या कम कीमती सामग्रियों को निकालने की लागत को इससे होने वाले मुनाफे की तुलना में काफी महंगा माना जाता है, इसलिए लोगों को लगता है कि इन सामग्रियों को निकालना लाभकारी व्यवसाय नहीं है और इसी धारणा के चलते आमतौर पर इन उपकरणों को फेंक दिया जाता है। इन इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं में उपयोग आने वाले अधिकतर अवयवों में प्राकृतिक परिस्थितियों में अपघटित होने की विशेषता नहीं पाई जाती है और न ही इनमें मिट्टी में घूल-मिल जाने का ही गुण होता है। इलेक्ट्रॉनिक रद्दी में लगभग 40 : 30 : 30 के आधार पर क्रमश: धातु, प्लास्टिक एवं अपवर्तित ऑक्साइड्स होते हैं। ये इलेक्ट्रॉनिक उपकरण बहुत से रासायनिक तत्वों व यौगिकों से मिलकर बने हो सकते हैं। उदाहरणार्थ एक सेल्युलर फोन में 40 से भी अधिक तत्व विद्यमान हो सकते हैं। ई-कचरा में मुख्यत: लोहा, जस्ता, एल्यूमीनियम, सीसा, टिन, चांदी, सोना, आर्सेनिक, गिलट, क्रोमियम, कैडमियम, पारा, इण्डियम, सैलिनियम, वैनेडियम, रुथेनियम जैसी धातुएं मिली होती हैं।

हाल ही में किए गए शोध के अनुसार वर्ष 2025 तक एक हज़ार मिलियन से भी अधिक कम्प्यूटरों की रिसाइक्लिंग की व्यवस्था की आवश्यकता है। उचित दिशा-निर्देश के द्वारा ही इनका रिसाइक्लिंग किया जाना चाहिए। भारत में ई-कचरे का निपटान प्राय: अनौपचारिक पुनर्चक्रण केन्द्रों में होता है जहां पुन: उपयोग या हाथ से तोड़ने हेतु इन्हें अलग-अलग किया जाता है। फिर मूल्यवान धातुओं हेतु चुनकर साफ करने के पश्चात इन्हें अकुशल व विषाक्त उत्पाद व्यवस्था में नष्ट करने की प्रक्रिया से गुज़ारते हैं। भारत में हज़ारों की संख्या में महिला पुरुष व बच्चे इलेक्ट्रॉनिक कचरे के निपटान में लगे हैं। इस कचरे को आग में जलाकर इसमें से आवश्यक धातु आदि भी निकाली जाती हैं। इसे जलाने के दौरान ज़हरीला धुआं निकलता है, जो कि काफी घातक होता है।

इलेक्ट्रॉनिक चीजों को बनाने के उपयोग में आने वाली सामग्रियों में अधिकतर कैडमियम, निकेल, क्रोमियम, एंटीमोनी, आर्सेनिक, बेरिलियम और मरकरी का इस्तेमाल किया जाता है। ये सभी पर्यावरण और स्वास्थ्य के लिए घातक हैं। इनमें से काफी वस्तुएं तो रीसाइकल करने वाली कंपनियां ले जाती हैं, लेकिन कुछ वस्तुएं नगर निगम के कचरे में चली जाती हैं। इससे निकलने वाले हानिकारक रसायन न सिर्फ मिट्टी को दूषित कर रहे हैं बल्कि भूजल को भी ज़हरीला बना रहे हैं। कैडमियम से फेफड़े प्रभावित होते हैं, जबकि कैडमियम के धुएं और धूल के कारण फेफड़े व किडनी दोनों को गंभीर नुकसान पहुंचता है। एक कम्प्यूटर में प्राय: 3.8 पौंड सीसा, फास्फोरस, केडमियम व मरकरी जैसे घातक तत्व होते हैं, जो जलाए जाने पर सीधे वातावरण में घुलते हैं। इनका अवशेष पर्यावरण के विनाश का कारण बनता है। वैज्ञानिकों के अनुसार पर्यावरण में असावधानी व लापरवाही से इस कचरे को फेंका जाता है, तो इनसे निकलने वाले रेडिएशन शरीर के लिए घातक होते हैं। इनके प्रभाव से मानव शरीर के महत्वपूर्ण अंग प्रभावित होते हैं। इस 'असुरक्षित ई-कचरे' की पुनरावर्तन-प्रकिया के दौरान उत्सर्जित रसायनों/प्रदूषकों के संपर्क में आने से तंत्रिका तंत्र, रक्त प्रणाली, गुर्दे और मस्तिष्क विकार, श्वसन संबंधी विकार, त्वचा विकार, गले में सूजन, फेफड़ों का कैंसर, दिल, यकृत को नुकसान पहुंचाता है। अत: उचित दिशा-निर्देश के द्वारा ही इनका पुनरावर्तन किया जाना चाहिए ताकि इससे हमारी आने वाली पीढ़ियों को नुकसान न हो। ●

धान की सीधी बिजाई में खरपतवारों की रोकथाम

✍ **टोडर मल पूनियां, मनजीत एवं सतबीर सिंह पूनियां**
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

जैसे-जैसे धान की बुआई की तारीख नज़दीक आ रही है हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार के वैज्ञानिकों ने किसानों को धान की सीधी बिजाई -डी एस आर तकनीक का सावधानी से उपयोग करने की सलाह दी है। धान की सीधी बिजाई के लिए किसान तैयार हैं पर उनका यह सवाल होता है कि रोपाई वाले धान की बजाय सीधी बिजाई वाले धान में अधिक खरपतवार आते हैं और इन खरपतवारों की रोकथाम मुश्किल होती है। कृषि वैज्ञानिकों के अनुसार भी सीधे धान में खरपतवारों की समस्या अधिक आती है क्योंकि एक तो इसमें रोपित धान की तरह पानी नहीं खड़ा रहता, दूसरा रोपित धान में नर्सरी के पौधे बड़े होने के कारण खरपतवारों से मुकाबला करने की क्षमता अधिक होती है। यह भी सच्चाई है कि यदि अनुशंसित तकनीकों की सही अनुपालना की जाए तो सीधी बिजाई वाले धान में भी खरपतवारों की समस्या को हल किया जा सकता है। आमतौर पर यह कहा जाता है कि सिर्फ खरपतवारनाशकों के द्वारा ही सीधी बिजाई वाले खेत में खरपतवारों की रोकथाम की जा सकती है जिसके कारण नए-नए खरपतवारनाशकों की मांग की जाती है जो पूरी तरह ठीक नहीं है। यहां यह बताना आवश्यक है कि खरपतवारनाशकों के उपयोग के साथ-साथ विभिन्न सस्य क्रियाओं की अनुपालना भी खरपतवारों की रोकथाम में महत्वपूर्ण है। यदि सीधी बिजाई करते समय निम्नलिखित विभिन्न सस्य क्रियाओं को ध्यान में रखा जाए तो खरपतवारों की रोकथाम आसानी से की जा सकती है :

1. बिजाई से पूर्व खेत को लेजर लेवलर से अच्छी तरह समतल करें।
2. रेतीली मिट्टी वाले खेतों में सीधी बिजाई से धान की फसल न लें।
3. सीधी बिजाई उन्हीं खेतों में करें जहां विगत वर्षों में धान की खेती पारंपरिक विधि से की जाती हो तथा जिन खेतों में गन्ना, कपास व मक्का की फसल ली जाती हो उनमें सीधी बिजाई न करें।
4. धान की बिजाई जून के पहले पखवाड़े में पलेवा के उपरांत गीली बत्तर अवस्था में करें।
5. बिजाई के लिये केवल कम अवधि में पकने वाली किस्मों का ही चयन करें।
6. बिजाई से पूर्व बीज को 10-12 घंटे पानी में भिगोएं तथा बाद में छाया में सुखाकर वह बीज उपचार के बाद बुवाई करें।
7. बुवाई सुबह या शाम के समय की जानी चाहिए एवं तुरंत बाद खरपतवारनाशक का छिड़काव करें।
8. जहां तक संभव हो धान की सीधी बिजाई लकी सीड ड्रिल के माध्यम से की जानी चाहिए क्योंकि यह खरपतवारनाशक का छिड़काव भी साथ-साथ करती है।
9. पहली सिंचाई बिजाई के लगभग 21 दिन बाद लगाएं।

लेजर लेवलर से समतल करने के कारण फसल एकसार होती है। रेतीली ज़मीनों में सीधी बिजाई से कम पैदावार आएगी और पानी अधिक लगाने के कारण खरपतवारों की समस्या और भी बढ़ेगी। पिछले वर्ष धान वाले खेतों में सिर्फ धान के खरपतवार आएंगे जबकि गन्ने, कपास व मक्के के खेतों में अलग-अलग तरह के खरपतवारों का प्रकोप भी बढ़ेगा जैसे कि गुड मधाना, चीनी घास व तांदला आदि, जिन की रोकथाम के लिए अधिक स्प्रे करने पड़ेंगे। पलेवा करने से मिट्टी की ऊपरी सतह में मौजूद खरपतवारों के बीज उग जाते हैं जो कि खेत तैयार करते समय नष्ट हो जाते हैं। बिजाई के तुरंत बाद गीली बत्तर अवस्था में स्प्रे करने से खरपतवारनाशकों का असर अधिक प्रभावी होता है। शाम को स्प्रे करने से रात ठंडी होने के कारण भी यह अधिक असरदार साबित होते हैं दिन में छिड़काव के कारण खरपतवारनाशकों के उड़ने का खतरा रहता है व खेत भी जल्दी सूख जाता है। प्रथम सिंचाई में देरी से खरपतवारनाशक की परत बनी रहती है और ऊपर वाली परत सूखने के कारण नए खरपतवार नहीं उगते एवं पौधों में जड़ों का विकास भी अच्छा होता है जिससे सिंचाई के बाद पौधों की वृद्धि अच्छी होती है एवं पोषक तत्व विशेष रुप से लोहे की कमी की समस्या भी कम हो जाती है।

सूखे खेत में बिजाई करके बाद में पानी लगाया जाता है तो बत्तर आने पर छिड़काव की जाती है और फिर चार-पांच दिन बाद धान बाहर निकलने के लिए दोबारा और हफ्ते बाद तीसरा पानी लगाया जाता है इस तरह अधिक पानी लगने के कारण पानी की खपत अधिक होती है और खरपतवारनाशक की परत पतली पड़ जाती है और खरपतवार जल्दी उगना शुरू हो जाते हैं।

खरपतवारनाशकों का प्रयोग बिजाई के समय व बाद में किया जाता है। बिजाई के तुरंत बाद बत्तर खेत में और सूखे खेत में बिजाई के बाद पैर ना चले तब 1.3 लीटर प्रति एकड़ स्टांप 200 लीटर पानी में घोल के फ्लैट फैन या फ्लड जेट नोजल द्वारा किया जाता है। यह खरपतवारनाशक घास जाति वाले खरपतवारों जैसे कि सांवक, मधाना, चीनी घास, तकड़ी घास, मकड़ा और कुछ चौड़ी पत्ती वाले घास को भी उगने से रोकता है। खड़ी फसल में खरपतवार जब तीन से चार पत्ती की हो तो खरपतवारनाशक का प्रयोग करें।

सावंक और धान के मोथा के नियंत्रण के लिए 100 मिलीलीटर प्रति एकड़ के हिसाब से नॉमिनी गोल्ड/माचो/तारक 10 ई.सी. का उपयोग करें। मधाना, चीनी घास, तकड़ी घास, मकड़ा के लिए 400 मिलीलीटर प्रति एकड़ राईसस्टार ईसी (Ricestar 6-7 EC) का उपयोग करें। चौड़ी पत्ती वाले और गांठ वाला मोथा/डीला की रोकथाम के लिए अश्वल मिक्स 20 : डब्लू पी 8 ग्राम प्रति एकड़ (पंजाब कृषि विश्वविद्यालय की सिफारिश) का छिड़काव करें। छिड़काव के समय खेत में नमी होना बहुत आवश्यक है। छिड़काव के लिए फ्लड जेट य फ्लैट फैन नोज़ल का उपयोग करें। ऊपर उद्धरित सभी अनुसंशित तकनीकों को अपनाने के साथ-साथ छिड़काव की सही विधि का उपयोग करके व सही समय पर सही खरपतवारनाशक का उपयोग करना खरपतवार प्रबंधन को आसान बनाता है। ●

आवश्यक सूचना

''**हरियाणा खेती**'' मासिक पत्रिका के सदस्यों को सूचित किया जाता है कि हम उन्हें उनकी पत्रिका नियमित रूप से भेज रहे हैं, अगर फिर भी किसी सदस्य को उसकी पत्रिका नहीं मिल रही है तो अपने क्षेत्र के डाकिया (पोस्टमैन) से सम्पर्क करें। अगर फिर भी पत्रिका नहीं मिलती है तो आप हमारे कार्यालय में आकर अपने हाथ से पत्रिका को पोस्ट करके अपनी तसल्ली करें।

सह-निदेशक (प्रकाशन)

मिर्च की उन्नत खेती

✍ **सुमित देसवाल, अर्चना बराड़ एवं देविंदर सिंह**
सब्जी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मिर्च एक मसालेदार फल है जिसका उपयोग व्यंजनों की तैयारी में किया जाता है। इसे भारत की सबसे मूल्यवान फसल के रूप में जाना जाता है। इसका उपयोग विभिन्न करी और चटनी के सिद्धांत घटक के रूप में किया जाता है, सब्जियों, मसालों, सॉस और अचार में भी उपयोग किया जाता है। मिर्च में तीक्ष्णता सक्रिय घटक 'कैपेसिसिन' का कारण है, एक अल्कलॉइड। इसकी उत्पत्ति मैक्सिको से हुई है और इसका उपयोग दुनिया भर में भोजन की तैयारी और दवाओं में एक घटक के रूप में किया जाता है। विश्व स्तर पर, चीन मिर्च का सबसे बड़ा उत्पादक है। नवीनतम आंकड़ों के अनुसार, भारत मिर्च उत्पादन में दुनिया में सबसे ऊपर है, इसके बाद चीन, पेरू, स्पेन और मैक्सिको हैं। भारतीय राज्यों में आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक, उड़ीसा, तमिलनाडु, बिहार, यूपी और राजस्थान मुख्य मिर्च उत्पादक राज्य हैं। भारतीय मिर्च विशेष रूप से आंध्र प्रदेश के गुंटूर ज़िले में उगाए जाने वाले तीखेपन और रंग के लिए जाने जाते हैं। कुछ बड़े आकार की मिर्च को बेल मिर्च कहा जाता है और इसका उपयोग सब्जी के रूप में किया जाता है।

मिर्च की वानस्पतिक जानकारी : मिर्ची को सोलानासी परिवार से संबंधित माना जाता है, जिसे वनस्पति रूप से कैप्सिकम एनुम कहा जाता है। यह एक छोटी, वार्षिक झाड़ी है जिसमें एक सीधा शाखित शूट है। इसमें साधारण पत्तियों के साथ एक टैप रूट सिस्टम है। फूल छोटे, सफेद रंग के और लटकन वाले होते हैं। दूसरे शब्दों में, अन्य पौधों के विपरीत मिर्च के फूल नीचे गिरते हैं और लटकन की तरह लटकते हैं। मिर्च के फल भी इसी तरह नीचे की ओर लटकते हैं। मिर्च के बीज फल के भीतर समाहित होते हैं।

जलवायु संबंधी आवश्यकताएं : मिर्च एक उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय संयंत्र है, जिसमें गर्म, नम अभी तक शुष्क मौसम के संयोजन की आवश्यकता होती है। विकास के चरण के दौरान इसे गर्म और आर्द्र मौसम की आवश्यकता होती है। हालांकि, एक शुष्क मौसम फल की परिपक्वता के लिए उपयुक्त है। मिर्च की वृद्धि के लिए 20-25°C की तापमान सीमा आदर्श है। 40°C या अधिक होने पर फल विकास प्रभावित होता है। इसी प्रकार भारी वर्षा की स्थिति में पौधा सड़ जाता है । हालांकि, फलने की अवधि के दौरान कम नमी की स्थिति में कली ठीक से विकसित नहीं होती है। इसलिए, फूल और फल गिर सकते हैं। औसत तापमान 18-40°C, औसत वर्षा 600-1500 मिलीमीटर।

मिर्च की खेती के लिए मिट्टी : मिर्च कई प्रकार की मिट्टी-रेतीली से भारी मिट्टी में उगाई जाती है। एक अच्छी तरह से सूखा, उचित नमी धारण क्षमता के साथ काफी हल्का उपजाऊ दोमट आदर्श है। हल्की मिट्टी भारी मिट्टी की तुलना में बेहतर गुणवत्ता वाले फलों का उत्पादन करती है। मिर्च की फसल पीएच 6 से 7 तक की मिट्टी की प्रतिक्रिया पसंद करती है।

मिर्च की खेती के लिए सीज़न : मिर्च की खेती खरीफ और रबी दोनों फसलों के रूप में की जा सकती है। इसके अलावा वे अन्य समय पर भी लगाए जाते हैं। खरीफ की फसल के लिए बुवाई के महीने मई से जून हैं, रबी फसलों के लिए सितंबर से अक्तूबर। यदि उन्हें गर्मियों की फसलों के रूप में लगाया जाता है तो जनवरी-फरवरी महीने चुने जाते हैं।

मिर्च की खेती के लिए पानी : मिर्च ऐसी फसलें हैं जो बहुत अधिक पानी का सामना नहीं कर सकती हैं। भारी वर्षा और ठहराव के कारण पौधों के सड़ने का परिणाम होता है। सिंचित फसलों के मामले में, जब आवश्यक हो तभी पानी देना चाहिए। बार-बार पानी देने से फूलों की छंटाई और वानस्पतिक विकास में तेज़ी आएगी। सिंचाई के लिए पानी की मात्रा, सिंचाई की संख्या और इसकी आवृत्ति अत्यधिक जलवायु परिस्थितियों और मिट्टी के प्रकार पर निर्भर करती है। यदि पत्तियां दिन के समय गिरना शुरू हो जाती हैं तो यह पानी की आवश्यकता का संकेत है। इसी तरह, अगर फूल कमज़ोर लगते हैं या पर्याप्त शक्ति नहीं दिखाते हैं, तो फसल की सिंचाई में मदद मिलेगी। एक बार मिट्टी की नमी 25% से कम हो जाने पर ही सिंचाई की आवश्यकता है।

उन्नत किस्में :

सीएच -1: इसे पीएयू लुधियाना द्वारा विकसित किया गया है। पौधे मध्यम आकार के हल्के हरे रंग के फल होते हैं जो पकने पर गहरे लाल रंग के हो जाते हैं। फल अत्यधिक तीखे और आकर्षक होते हैं। फल सड़ने और गीला सड़ने के लिए सहिष्णु। यह लाल मिर्च 96 क्विंटल प्रति एकड़ की औसत उपज है।

सीएच -3 : यह पीएयू लुधियाना में विकसित किया गया है। सीएच -1 से अधिक फल की लंबाई। यह लाल मिर्च की 105 क्विंटल प्रति एकड़ की औसत उपज है।

सीएच -27: पौधे लंबे होते हैं और लंबे समय तक फल देते रहते हैं। फल मध्यम लंबे (6.7 सैं.मी.), पतले चमड़ी वाले, हल्के हरे रंग के होते हैं जब अपरिपक्व और गहरे लाल जब परिपक्व होते हैं। यह लीफ कर्ल वायरस, फ्रूट रोट और रूट नॉट नेमाटोड और माइट जैसे चूसने वाले कीटों के प्रति प्रतिरोधी हैं। लाल पके फलों की औसत उपज 96 क्विंटल प्रति एकड़ है।

पूसा ज्वाला : पौधे बौने, जंगली, हल्के हरे रंग के होते हैं। फल 9-10 सैंटीमीटर लंबे, हल्के हरे, अत्यधिक तीखे, थ्रिप्स और माइट्स के प्रति काफी सहनशील होते हैं। 34 क्विंटल प्रति एकड़ (हरा) और 7 क्विंटल प्रति एकड़ (सूखा) की औसत उपज।

पूसा सदाबहार : पौधे सीधा, बारहमासी (2-3 वर्ष), 60-80 सैंटीमीटर लंबा, फल 6-8 सैं.मी. लंबा, 6-14 फल/गुच्छों के साथ गुच्छों में पैदा होता है, पके फल गहरे लाल, अत्यधिक तीखे, सीएमवी के लिए प्रतिरोधी होते हैं 38 क्विंटल प्रति एकड़ (हरा) और 8 क्विंटल प्रति एकड़ (सूखा) की औसत उपज।

हिसार शक्ति: जल्दी उपज,रोग प्रतिरोधक क्षमता अधिक, क्लस्टर में फल (5-6 फल), फल की लंबाई 7-8 सैंटीमीटर, औसत उपज 50-55 क्विंटल प्रति एकड़।

खेत की तैयारी : मिर्च की खेती के लिए ज़मीन 2-3 बार जुताई की जाती है और एक बढ़िया टिल्ट में लाया जाता है। बजरी, पत्थर और मिट्टी में मौजूद अन्य ऐसी अवांछित सामग्री को हटाया जाना चाहिए। यदि बीज सीधे मिट्टी में बोया जा रहा है, तो इसे अंतिम जुताई चक्र के साथ किया जाता है। हालांकि, जुताई के समय, मिट्टी को अच्छी तरह से निष्फल किया जाना चाहिए ताकि पौधों को प्रभावित करने वाले रोगों को जांच में रखा जाए।

बीज दर, नर्सरी प्रबंधन और स्थानांतरण : एक हैक्टेयर के लिए 1.5- 2.0 किलोग्राम बीज पर्याप्त है, आमतौर पर मिर्च का प्रत्यारोपण इसलिए किया जाता है क्योंकि बेहतर परिणाम प्राप्त होते हैं और विशेष देखभाल तब दी जा सकती है। जब पौधे 4 -6 सप्ताह पुराने होते हैं, तो रोपाई मैन्युअल रूप से की जा सकती है और 4-5 पत्तियां विकसित होती हैं, आमतौर पर रोपाई शाम को की जाती है, उत्तर भारतीय मैदानों में पहली बुवाई नवम्बर के तीसरे सप्ताह में की जाती है और मध्य फरवरी में रोपाई की जाती है। दूसरी बुवाई फरवरी के पहले सप्ताह में की जाती है और रोपाई अप्रैल के अंत में की जाती है। संरक्षित

नर्सरी बुवाई मई-जून और अक्तूबर-नवम्बर में किया जाएगा। एक एकड़ के पौधे के लिए 15-20 क्यारियां (3.0 x 1.0 मीटर) की आवश्यकता होती है, बीज बोने से पहले बीज का उपचार करना आवश्यक है, 2 ग्राम थाइरम दवा प्रति किलोग्राम बीज की दर से दें।

सिचाई प्रबंधन : मिर्च की फसल को मिट्टी की किस्म, भूमि के प्रकार व वर्षा के आधार पर सिंचाई कर सकते हैं। यदि वर्षा कम हो रही हो तो 10 से 15 दिन के अंतराल पर सिंचाई करना चाहिए। यदि मिट्टी दोमट मिट्टी हो तो 10 से 12 दिन के अंतराल पर और ढालू भूमि पर 10 दिन के अंतराल पर सिंचाई करना चाहिए। मिर्च की फसल में फूल व फल बनते समय सिंचाई करना अत्यन्त आवश्यक है। इस स्थिति में सिंचाई न करने पर मिर्च के फल व फूल छोटी अवस्था में गिर जाते हैं। इसके साथ ही मिर्च की फसल में पानी नहीं रुकने देना चाहिए।

खाद और उर्वरक : मिर्च की फसल में उर्वरकों का प्रयोग मिट्टी परीक्षण के आधार पर करें। सामन्यत: एक हैक्टेयर क्षेत्रफल में 25 से 30 टन गोबर की पूर्णत: सड़ी हुई खाद या 5 से 6 टन वर्मीकंपोस्ट खेत की तैयारी के समय मिलायें। नत्रजन 120 से 150 किलोग्राम, फास्फोरस 60 किलोग्राम तथा पोटाश 80 किलोग्राम का प्रयोग करें।

खरपतवार प्रबंधन : सामान्यत: मिर्च में पहली निराई 20 से 25 और दूसरी निराई 35 से 40 दिन पश्चात् करें या इसके लिए निराई-गुड़ाई यंत्र का भी इस्तेमाल किया जा सकता है। हाथ से निराई या यंत्र को ही प्राथमिकता दें, जिससे खरपतवार नियंत्रण के साथ-साथ मृदा नमी का भी संरक्षण हो, मल्चिंग का प्रयोग करें।

प्रमुख कीट एवं रोकथाम : सफेद मक्खी, पर्ण जीवी (थ्रिप्स), हरा तेला व मोल्या - ये कीट पत्तियों और पौधों के कोमल भाग से रस चूसकर फसल को काफी नुकसान पहुंचाते हैं। इनकी रोकथाम 400-500 मि. ली. मैलाथियान 50 ई.सी. 250-300 लीटर पानी की दर से प्रति एकड़, 15 से 20 दिन के अंतर पर छिड़काव करें।

प्रमुख रोग एवं रोकथाम : आर्द्रगलन (डेम्पिंग ऑफ) - रोग का प्रकोप पौधे की छोटी अवस्था में होता है। ज़मीन की सतह पर स्थित तने का भाग काला पड़ कर कमज़ोर हो जाता है और नन्हें पौधे गिरकर मर जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए बीज को बुवाई से पूर्व थाइरम या कैप्टान 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित कर बोयें। नर्सरी में बुवाई से पूर्व थाइरम या कैप्टान 4 से 5 ग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से मिलाएं। नर्सरी, आस पास की भूमि से 4 से 6 इंच उठी हुई भूमि में बनाएं।

फल तुड़ाई : हरी मिर्च रोपाई के लगभग 85 से 95 दिन बाद तोड़ने योग्य हो जाती है। इस तरह 1 से 2 सप्ताह के अन्तर पर पके फलों को तोड़ा जाता है। इस प्रकार 5 से 8 बार तोड़ाई की जाती है। सूखी मिर्च के लिये फलों को 140 से 150 दिन बाद जब मिर्च का रंग लाल हो जाता है तब तोड़ा जाता है। लेकिन बार-बार मिर्च तोड़ने से फलन अधिक होता है। पके फलों को 8 से 10 दिन तक धूप में सुखाया जाता है। आधा सूख जाने पर फलों की सायंकाल के समय एक ढेरी में इकट्ठा करके दबा दिया जाता है। जिससे की मिर्च चपटी हो जाए तथा सूखने में आसानी रहती है। बड़े पैमाने पर मिर्ची को 53 से 54 सेंटीग्रेट तापमान पर 2 से 3 दिन तक सुखाया जाता है।

पैदावार : उपरोक्त वैज्ञानिक विधि से खेती करने के बाद अनुकूल परिस्थितियों में हरी मिर्च की सामान्य किस्मों से औसत उपज 30 से 80 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक उपज प्राप्त की जा सकती है। सूखी मिर्च की सामान्य किस्मों से 8 से 10 क्विंटल प्रति हैक्टेयर प्राप्त की जा सकती है। ●

चटाईनुमा धान की (मैट टाईप) पौध उगाने की विधि

✍ **अनिल सरोहा, संदीप आंतिल एवं कुलदीप दहिया**
फार्म मशीनरी एवं पॉवर अभियांत्रिकी
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

धान हमारे प्रदेश की मुख्य खाद्य फसल है। यह लगभग 13 लाख हैक्टेयर भूमि पर लगाया जाता है जिसकी रोपाई मज़दूरों द्वारा की जाती है। प्राय: देखा गया है कि मजदूर न मिलने से रोपाई समय पर नहीं हो पाती, साथ ही खेत में पौधों की संतुलित संख्या भी नहीं मिल पाती जिससे उपज में गिरावट आती है। इन परिस्थितियो में मशीन द्वारा धान की रोपाई एक अच्छा विकल्प है जिसके लिए चटाईनुमा पौध की आवश्यकता होती है। चटाईनुमा पौध तैयार करने की विधि इस प्रकार है :

मिट्टी का मिश्रण तैयार करना : दोमट भूमि में मिट्टी का मिश्रण बनाने के लिए मिट्टी, कम्पोस्ट एवं रेत क्रमश: 7:1:1 के अनुपात में मिलाते हैं जबकि मटियार दोमट भूमि में क्रमश: 7:1:2 के अनुपात में मिलाते हैं और हल्की मिट्टी होने पर रेत मिलाने की आवश्यकता नहीं होती है। मिश्रण बनाने से पहले मिट्टी, रेत व कम्पोस्ट को बारीक करके 4-5 मि.मी. छेद वाले झारने से अलग-अलग करके छान लेना चाहिए ताकि अवांछित कंकड आदि अलग निकल जायें। पौध की क्यारियां सामान्य स्तर से थोडी (1-2 इंच) उठी हुई बनायें तथा इसके एक तरफ नाली की व्यवस्था करें जिससे सिंचाई की जा सके और आवश्यकता पडने पर जल निकासी कर सकें। सामान्यत: एक क्यारी का आकार 25 मीटर x 1 मीटर रखते हैं। एक एकड़ क्षेत्रफल की रोपाई के लिए 25 वर्ग मीटर की पौध पर्याप्त होती है।

बीज तैयार करना : चटाईनुमा पौध तैयार करने के लिए 8 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ की आवश्यकता होती है जिसको बिजाई से पहले अंकुरित करते हैं। अंकुरण के लिए बीज को 24 घंटे 5 ग्राम एमीसान प्रति 10 लीटर पानी के घोल में भिगोते हैं तथा इसके बाद बाहर निकाल कर गीली बोरी से ढक देते हैं। इस प्रकार बीज में अंकुरण हो जाता है।

बिजाई व सिंचाई : तैयार क्यारियों में पॉलीथिन चादर (200-250 गेज) फैला देते हैं व उसमें 10-15 सैं.मी. दूरी पर बारीक छेद बनाते हैं जिससे पानी का बहाव तो हो सके, परन्तु पौध की जड़ें न निकल सकें। क्यारी में पॉलीथिन चादर पर लोहे का फ्रेम (500 सैं.मी. x 30 सैं.मी. x 2.5 सैं.मी.) रखते हैं तथा उसमें मिट्टी का मिश्रण भर देते हैं। ध्यान रखें फ्रेम के मिश्रण की गहराई समान होनी चाहिए। मिट्टी की परत पर अंकुरित बीज को सामान्य रूप से छिड़क देते हैं सामान्यत: 800 ग्राम महज प्रति वर्ग मीटर की आवश्यकता होती है। बीज छिड़कने के बाद बीज के ऊपर 0.5 सैं.मी. की मिट्टी के मिश्रण की परत चढाते हैं जिससे बीज को ढका जा सके। अब प्रतिदिन केन से पानी का छिड़काव करते हैं तथा गीली बोरी से क्यारी को ढक देते हैं। बीज की बिजाई शाम के समय करें जब मिट्टी गर्म न हो। गर्म मिट्टी का जमाव पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। मौसम के आधार पर पहले तीन दिन दो से तीन बार हज़ारे (रोज़कैन) से आवश्यकतानुसार हल्की सिंचाई करें व इसके बाद नाली से सीधी सिंचाई करें। ध्यान रहे सिंचाई शाम के समय ही करें ताकि सुबह तक चटाई पर पानी न रहे व गर्म पानी से पौध खराब न हो। इस विधि से 20-25 दिन में पौध रोपाई के लिए तैयार हो जाती है।

पोषक तत्व : चटाईनुमा पौध में सामान्यत: उर्वरकों का प्रयोग नहीं करते हैं। बिजाई के समय दी गई कम्पोस्ट से पोषक तत्वों की कमी पूरी हो जाती है। यदि पौध में पीलापन नज़र आए तो 50 ग्राम यूरिया एवं 10 ग्राम ज़िंक सल्फेट 2 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की पौध पर समान रूप से 2 बार छिड़काव करें। ●

कृषक और ग्राम : तब और अब

✍ **सुषमा आनन्द**
प्रकाशन अनुभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत माता ग्रामवासिनी है। भारत के गांव भारत की आत्मा हैं, भारतीय जीवन के दर्पण हैं, भारत की संस्कृति और सभ्यता के प्रतीक हैं। भारतीय गांव प्रकृति का वरदान हैं। प्राकृतिक सुषमा के घर हैं। भारत के निवासियों के लिए अन्न, फल, फूल, साग, सब्जी, दूध, घी के प्रदाता हैं। खेतों के लिए कृषकों के साथ ही सेना को सैनिक, पुलिस को सिपाही और श्रमिक-प्रतिष्ठानों को मज़दूर गांव से ही मिलते हैं।

दूसरी ओर भारतीय गांव देश की सबसे पिछड़ी बस्ती हैं। दरिद्रता की साकार प्रतिमा हैं। अज्ञान और अशिक्षा की धरती हैं। रोग और अभावों के केंद्र हैं। ईर्ष्या और द्वेष के अग्निकुंड हैं। शिक्षालयों और औषधालयों की पहुंच के परे हैं। मुकदमे बाज़ी के अखाड़े हैं।

गांवों की दुर्दशा का मुख्य कारण है-अशिक्षा। अशिक्षा अज्ञान की जननी है। अज्ञान अंधकार का पथ प्रदर्शक है, ईर्ष्या-द्वेष का सहयोगी है। दूसरे के खेत का पानी अपनी ओर मोड़ लेना, दूसरे के खेत की फसल अपने खेत में डाल देना, दूसरे के हरे-भरे खेतों में अपने पशु छोड़ देना किसान की अज्ञानता के प्रतीक हैं। जिससे वैर हो उसके पशु हंकवा देना, खलियान फूंक देना, घर में सेंध लगवा देना, यहां आम प्रवृत्ति है। बात-बात में झगड़ना, लट्ठ बरसाना, भाले-फरसे निकाल लेना ग्रामीणों का स्वभाव बन गया है।

अज्ञानता का ही दुष्परिणाम है कि सेठ-साहूकार ग्रामवासियों को लूटते हैं। पांच देकर दस पर अंगूठा टिकवाते हैं। सूद में उसके कपड़े उतारते हैं और मूल में उनको बंधुवा मज़दूर बना लेते हैं। जन्मोत्सव, शादी तथा अन्य धार्मिक और पारिवारिक उत्सवों में ग्रामीणजन झूठी शान में चादर से बाहर पैर पसारते हैं। अपने भविष्य के अंधकार को निमंत्रण देते हैं।

भारतीय गांव आधुनिक सुख-सुविधा से कोसों दूर हैं। अपवाद रूप में कुछ पक्के मकानों को छोड़कर कच्चे मकान और झोंपड़ियां वहां के निवास-स्थान हैं। स्वच्छ पेय-जल का वहां अभाव है। मल-मूत्र की विधिवत् निकासी नहीं है। गांव में गड्ढे-सड़ते हैं, दुर्गंध पैदा होती है। बिजली के लाभ से वे वंचित हैं।

गांव में चिकित्सालय नहीं, प्रशिक्षित डाक्टर नहीं, नर्स नहीं। नीम हकीमों का राज्य है, जो खतरा-ए-जान हैं। जादू-टोने आज भी ग्रामवासियों में स्वस्थ रहने की औषध हैं। गंडा-तावीज़ उनके स्वास्थ्य के प्रहरी हैं, भाग्य विधाता हैं। इसलिए छोटे-छोटे रोग भी गांव में मृत्यु का कारण बन जाते हैं।

परन्तु अब गांवों में नई चेतना, नई ज्योति, नया जीवन भी आया है। आर्थिक शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए सहकारी बैंक स्थापित हुए। ज़मींदारी प्रथा का उन्मूलन हो गया है। भूदान-यज्ञ ने किसान को भूमि का मालिक बना दिया। भूमि-कानून लागू कर भूमि-सीमा निश्चित कर दी गई। छोटे खेतों की समस्या का समाधान चकबन्दी तथा सहकारी खेतों द्वारा किया गया। फसल को शहर तक पहुंचाने के लिए गांव को पक्की सड़कों से जोड़ा गया। ऋण देकर ट्रैक्टर दिए, कर्ज़ देकर सुन्दर बीज दिया, उर्वरक खाद दी। गांव को शिक्षित करने के लिए रेडियो और दूरदर्शन से फसल उगाने की विधियां और ग्राम्य-जीवन सुधार कार्यक्रम चल रहे हैं। ग्राम सेवक-सेविकाएं ग्रामवासियों के लिए देवदूत हैं। कृषि उन्नति के लिए कृषि विश्वविद्यालय स्थापित हो गए हैं। हरियाणा में, चौधरी चरण हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार हर प्रकार से किसानों की सेवा में तत्पर है, इसके 19 कृषि विज्ञान केन्द्र विभिन्न ज़िलों में स्थापित हैं और आस-पास के गांवों के किसानों की सहायता कर रहे हैं। विश्वविद्यालय ने कई सामुदायिक रेडियो स्टेशन भी स्थापित किए हैं। इन पर प्रसारित समाचारों द्वारा किसानों को सूचनाएं दी जाती हैं। मौसम के बारे में जानकारी दी जाती है। विश्वविद्यालय के प्रकाशन अनुभाग द्वारा प्रतिमास हरियाणा खेती पत्रिका के माध्यम से किसानों को फसलों, बीजों, कीटनाशकों और उर्वरकों के बारे में जानकारी दी जाती है। रबी एवं खरीफ फसलों की समग्र जानकारी एवं फल, फूल, सब्जी उत्पादन की समग्र सिफारिशों द्वारा पूरी जानकारी किसानों को उपलब्ध कराई जाती है। देश के सभी कृषि विश्वविद्यालय किसानों की उन्नति के लिए अपना-2 कार्य सफलतापूर्वक कर रहे हैं।

ग्रामीण युवाओं की स्वरोज़गार प्रशिक्षण योजना, ग्रामीण शिल्पकारों की सुधार-योजना, ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों की विकास योजना, राष्ट्रीय सामाजिक सहायता योजना, रोज़गार गारंटी योजना तथा पंचायती राज योजनाओं द्वारा गांवों की सामाजिक और आर्थिक उन्नति के प्रयत्न सरकार द्वारा किए जा रहे हैं।

आज गांवों से अशिक्षा का अन्धकार दूर होता जा रहा है। गांव-गांव में प्राथमिक, माध्यमिक विद्यालयों का जाल बिछा है। कस्बों में हाई स्कूल खुल गए हैं, नगरों में कॉलेज खुल गए हैं। विश्वविद्यालय की शिक्षा ग्रामवासी की पहुंच में आ गई है। बिजली ने गांवों में प्रकाश फैलाया, रेडियो और दूरदर्शन ने ज्ञानवर्धन किया और जगती से गांव का सम्बन्ध स्थापित किया। बुद्धिमान, चतुर और समझदार ग्रामवासी इन योजनाओं से लाभान्वित हो सभ्यता की दौड़ में आगे बढ़ रहे हैं। पढ-लिख कर उच्च पदों पर पहुंच रहे हैं।

'किसान' कठोर परिश्रम, त्याग और तपस्वी जीवन का दूसरा नाम है। किसान का जीवन कर्मयोगी की भांति मिट्टी से सोना उत्पन्न करने की साधना में लीन रहता है। वीतराग संन्यासी की भांति उसका जीवन परम संतोषी है। तपती धूप, कड़कती सर्दी और घनघोर वर्षा में तपस्वी की भांति वह अपनी साधना में अडिग रहता है। सभी ऋतुएं उसके सामने हंसती-खेलती निकल जाती हैं और वह उसका आनन्द लूटता है। सृष्टि का पालन विष्णु-भगवान का कार्य है, मानव-समाज का पालन किसान का धर्म है। अत: किसान में हम भगवान विष्णु के दर्शन कर सकते हैं। प्राणिमात्र के जीवन को पालने वाले किसान का तपस्या-पूर्ण त्याग, अभिमान रहित उदारता, क्लान्ति रहित परिश्रम उसके जीवन के अंग हैं। उसमें सुख की लालसा नहीं होती। कारण, दु:ख उसका जीवन साथी है। संसार के प्रति अनभिज्ञता और अज्ञानता से उसे आत्म-ग्लानि नहीं होती, न दरिद्रता में दीनता का भाव-बोध होता है। किसान अहर्निश कर्म-रत रहता है। वह ब्रह्म मुहर्त में उठता है, पुत्र सम बैलों को भोजन परोसता है, स्वयं हाथ-मुंह धो, कलेवा कर कर्मभूमि 'खेत' में पहुंच जाता है। जहां उषा की किरणें उसका स्वागत करती हैं। वहां वह दिनभर कठोर परिश्रम करेगा और गोधूलि के समय अपने बैलों और हल के साथ घर लौटेगा।

चिलचिलाती धूप, पसीने से तर शरीर, पैरों में छाले डाल देने वाली तपन में भी वह निरन्तर कार्य करता रहता है। छाया के बारे में तो उसके मन में विचार ही नहीं आता। मूसलाधार वर्षा, बिजली की कड़क में भी वह अपनी फसल की रक्षा में संलग्न रहता है - वरुण देवता की ललकार का सामना करते हुए। प्रकृति के पवित्र वातावरण और शुद्ध वायुमण्डल में रहते हुए भी वह दुर्बल है, किन्तु उसकी हड्डियां वज्र के समान कठोर हैं। शरीर स्वस्थ और व्याधि से कोसों दूर है।

भारतीय कृषक-जीवन के भाष्यकार मुंशी प्रेमचन्द का विचार है "किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें सन्देह नहीं। उसकी गांठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव-ताव में भी वह चौकस होता है और उसका सम्पूर्ण जीवन प्रकृति का प्रतिरूप है। वृक्षों के फल, खेती में अनाज, गाय का दूध वह स्वयं नहीं प्रयोग करता, इसे दूसरे ही उपयोग करते हैं। किसान की सेवा निष्काम है।"

(शेष पृष्ठ 26 पर)

शुष्क क्षेत्रों में सावनी फसलों की पैदावार बढाने हेतु सस्य क्रियाएं

✍ सुरेंद्र कुमार शर्मा, अमित कुमार एवं प्रवीन कुमार
सस्य विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा प्रांत का मुख्य शुष्क भाग (87 प्रतिशत) दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्रों के अंतर्गत आता है जिसमें मुख्यत: हिसार, भिवानी, चरखी दादरी, महेंद्रगढ़, रेवाड़ी, गुरुग्राम, मेवात, झज्जर, सिरसा व फतेहाबाद ज़िलों का कुछ भाग आता है। इन क्षेत्रों में कम वर्षा (250-500 मि.मी.) होती है जिसकी 80 से 85 प्रतिशत वर्षा मानसून पर निर्भर करती है। बाजरा, मूंग व ग्वार असिंचित क्षेत्रों में सावनी की प्रमुख फसलें हैं। भूमि में नमी का सही ढंग से उपयोग न करना व वैज्ञानिक ढंग से खेती न करना आदि शुष्क क्षेत्रों की मुख्य समस्याएं हैं। फसलों व किस्मों का उपयुक्त चयन न होना, वर्षा जल का उचित संरक्षण न करना, पौधों की उपयुक्त संख्या का न होना, खरपतवारों को पनपने देना, कीट व बीमारी पर नियंत्रण न करना व पोषक तत्वों का उपयोग सही ढंग से न करना आदि कारणों से शुष्क क्षेत्रों में सावनी फसलों की पैदावार कम होती है। इसके अतिरिक्त बदलते हुए मौसम में वर्षा की कुल मात्रा व वर्षा के दिनों की संख्या भी बदलती जा रही है।

सस्य विज्ञान विभाग के अंतर्गत बारानी खेती अनुभाग शुष्क क्षेत्रों में पाई जाने वाली समस्याओं को आधार मानकर कार्य कर रहा है व इन समस्याओं पर काबू पाने के लिए काफी सिफारिशें व विधियां भी विकसित की गई हैं। इससे सावनी फसलों की पैदावार में बढ़ोत्तरी दर्ज की गई है व किसानों को भी लाभ मिल रहा है। इस प्रकार शुष्क क्षेत्रों में सावनी फसलों की पैदावार बढाने हेतु निम्नलिखित सस्य क्रियाओं को अपनाने पर बल देना चाहिए ताकि अधिक से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सके।

समुचित जल संरक्षण : वर्षा के पानी का समुचित संरक्षण ही शुष्क क्षेत्रों की सफलता की कुंजी है। अधिकतर शुष्क क्षेत्रों में खेत ऊंचे-नीचे पाए जाते हैं। अत: सबसे पहले खेत को समतल कर लेना चाहिए। जिन खेतों में ढलान अधिक हो, उन्हें छोटे-छोटे हिस्सों में विभाजित करके उनके चारों तरफ मेडबंदी कर लेनी चाहिए ताकि वर्षा का पानी खेत से बहकर बाहर ना जाए बल्कि उसका भूमि में यथावत संरक्षण हो जाए। वर्षा के पानी को अधिक मात्रा में रोकने के लिए खेतों में ढलान के विपरीत मेड़बंदी करनी चाहिए। खेत की हद एवं मोटी मेढ़ों पर सरकंडे लगाने से मेड़ें ज्यों की त्यों बनी रहती हैं। ग्रीष्म ऋतु में खेतों में प्रत्येक तीन वर्ष में एक बार गहरी जुताई करने से मिट्टी की जल शोषण शक्ति बढ़ती है। सावनी फसलों की बिजाई से पहले दो बार देसी हल या हैरो से जुताई मानसून की आरंभ की वर्षा में कर लेनी चाहिए।

उपयुक्त किस्मों का चयन : सावनी फसलों की उपयुक्त किस्मों का चयन शुष्क क्षेत्रों में पैदावार बढ़ाने में सहायक है। इस प्रकार सही किस्म का चयन समय रहते कर लेना चाहिए। बाजरा की शीघ्र पकने वाली संकर किस्में जैसे एच एच बी 67 (संशोधित), एच एच बी 197, एच एच बी 216, एच एच बी 226, एच एच बी 234 व एच एच बी 272 बिजाई के लिए उत्तम पाई गई हैं। ग्वार के लिए एच जी 365, एच जी 563 व एच जी 2-20 किस्में उपयुक्त हैं। मूंग की विकसित किस्मों में सत्या, मुस्कान, बसंती व एम एच 421 बिजाई हेतु उत्तम हैं। उड़द के लिए टी 9 व यू एच 1 उपयुक्त किस्में हैं।

खेत की तैयारी : खेत को तैयार करने के लिए हैरो की सहायता से एक या दो बार गहरी जुताई करके सुहागा लगाना चाहिए ताकि खेत भुरभुरा व समतल हो।

बिजाई का उपयुक्त समय : बिजाई का उपयुक्त समय किसी भी फसल की पैदावार बढ़ाने में सहायक है। अत: सावनी फसलों की बिजाई मानसून शुरू होने पर ही करनी चाहिए। यदि किसी वर्ष के जून के महीने में 25 से 30 मिलीमीटर वर्षा हो जाए तो बाजरा की बिजाई अवश्य कर देनी चाहिए।

बीज की मात्रा : बीज की सही मात्रा का प्रयोग भी सावनी फसलों की पैदावार बढ़ाने में सहायक है। इसके लिए बाजरा में 1.5 से 2.0 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ व ग्वार/मूंग/उड़द में 6 से 8 किलोग्राम बीज प्रति एकड़ के हिसाब से प्रयोग करना चाहिए।

बीज का उपचार : बीज को उपचारित करके बीजने से हमेशा अच्छी पैदावार मिलती है। बाजरा में प्रति एकड़ बीज को 100 मिलीलीटर बायोमिक्स से उपचारित करना चाहिए। दलहनी फसलों के बीज को राइजोबियम व पी. एस.बी. कल्चर से उपचारित करना चाहिए। कल्चर के साथ दी गई हिदायतों के अनुसार ही कल्चर का सही ढंग से प्रयोग करना चाहिए।

ग्वार में बैक्टीरियल ब्लाइट के नियंत्रण के लिए बीज का उपचार करना अति आवश्यक है। इसके लिए 6 लीटर पानी में 6 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन को घोल लें व इस घोल में 6 किलोग्राम ग्वार का बीज 25 से 30 मिनट तक भिगोएं व बाद में 30 से 40 मिनट बीज को छाया में सुखाकर बिजाई कर देनी चाहिए।

बिजाई का तरीका : पूर्व से पश्चिम दिशा में पंक्तियों में 45 सेंटीमीटर के फासले पर फसलों की बिजाई करनी चाहिए। इससे बीजों के अच्छे जमाव एवं खरपतवार नियंत्रण में मदद मिलती है।

पौधों की उपयुक्त संख्या : किसी भी फसल की पैदावार पौधों की संख्या पर निर्भर करती है। बाजरा में उपयुक्त पौधों की संख्या से पैदावार बढ़ती है। इसके लिए रीजर सीडर द्वारा बिजाई करने से सफलता मिली है। बाजरे की बिजाई के तुरंत बाद यदि वर्षा हो जाती है तो ज़मीन पर पपड़ी बनने की संभावना बहुत अधिक हो जाती है तथा यह पौधों की संख्या को प्रभावित करती है। रीजर सीडर के प्रयोग से इस समस्या पर काफी हद तक काबू पाया गया है। सावनी के मौसम में अधिक बारिश होने से इस यंत्र द्वारा बनी नाली जल निकास का कार्य करती है तथा पौधों को मरने से बचाया जा सकता है।

उचित पोषक तत्वों का प्रयोग : शुष्क क्षेत्रों में अधिकतर किसान भाई उचित पोषक तत्वों का प्रयोग नहीं करते, जिससे पैदावार काफी कम मिलती है, जबकि इन क्षेत्रों में नमी के साथ-साथ पोषक तत्वों की भी कमी पाई जाती है। पोषक तत्वों का प्रयोग हमेशा मृदा जांच के आधार पर ही करना चाहिए। बाजरा में 16 किलोग्राम नाइट्रोजन, 8 किलोग्राम फास्फोरस व 3 वर्ष में एक बार 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ डालना चाहिए। ग्वार व अन्य दाल वाली फसलों में 8 किलोग्राम नाइट्रोजन, 16 किलोग्राम फास्फोरस व 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ की दर से डालना चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण : शुष्क क्षेत्रों में किसान खरपतवारों को बढ़ने देते हैं जिससे वे फसलों को मिलने वाले मुख्य पोषक तत्वों व नमी को

(शेष पृष्ठ 26 पर)

सुदूर संवेदन के उपपोग से वन मापदंडों का मूल्यांकन

✍ **धर्मेन्द्र सिंह, चिन्तन नन्दा एवं संदीप आर्य**[1]
हरियाणा अंतरिक्ष अनुप्रयोग केंन्द्र (हरसैक), हिसार

मानवता के कल्याण के लिए वन महत्वपूर्ण हैं। यह जलवायु और जल संसाधनों को विनियमित करके और पौधों और जानवरों के आवास के रूप में सेवा करके पृथ्वी पर जीवन के लिए नींव प्रदान करते हैं। वन, आवास, ईंधन, भोजन, चारा और दवाओं जैसे आवश्यक वस्तुओं की एक विस्तृत श्रृंखला, और इसके अलावा मनोरंजन, आध्यात्मिक नवीकरण और अन्य सेवाओं के लिए भी अवसर प्रदान करते हैं। वन मानव की भूमि आधारित उत्पादों और सेवाओं की बढ़ती मांगों से अत्यधिक दबाव में हैं, जिस कारण इनके भूमि उपयोग अस्थिर रूपों में और गिरावट की ओर जा रहे हैं, साथ ही वनोन्मूलन और वन पतन जैसी समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। वनोन्मूलन और पतन के कारण वनों की पर्यावरण के नियामकों के रूप में कार्य करने की क्षमता खोती जा रही है। वनोन्मूलन और पतन बाढ़ और भूमि अपरदन किस्म के खतरों को बढ़ाता है व मिट्टी की उर्वरता की क्षमता को कम करता है और परिणामस्वरुप, जंगल और जानवरों के जीवन को नुकसान पहुंचाता है। यह जंगलों से प्राप्त वस्तुओं और सेवाओं को खतरे में डालता है। जंगलों से सम्बंधित इन समस्याओं को हल करने के लिए वन मूल्यांकन अति आवश्यक होता है। वन मापदंडों का मूल्यांकन, वनों से संबंधित विभिन्न सूचनाओं जैसे वनों का क्षेत्रफल, इनका प्रकार, इनमें उपस्थित वन्यजीव, वन भार (बायोमास), पत्ती क्षेत्र सूचकांक (लीफ एरिया इंडेक्स), वन कार्बन आदि को एकत्रित और आकलित करना होता है।

वन आकलन के लिए संभावित उपकरण के रूप में सुदूर संवेदन : वन मानचित्रण, वन सीमा में विश्लेषण और समय के साथ उसमें परिवर्तन, वन जैव-भौतिक (लीफ एरिया इंडेक्स या एल.ए.आई., बायोमास आदि) और जैव रासायनिक (लीफ क्लोरोफिल सूचकांक, नाइट्रोजन सूचकांक, आदि) मापदंडों व वन संरचना और वन उत्पादकता, इस तरह के विशिष्ट प्रकार के आकलन के परिदृश्य में सुदूर संवेदन सुर्खियों में आता है। उपग्रह डेटा वैश्विक स्तर पर वन प्रकार के मानचित्रण के लिए एक पर्याय सूचना स्रोत प्रदान करता है। उपग्रह डेटा के आधार पर वन आवरण में अनुमानित परिवर्तन से कार्बन डायनेमिक्स, जलवायु परिवर्तन और जैव विविधता के खतरों को समझने के लिए शोधकर्ताओं को बहुत मदद मिलती है। वन-आवरण परिवर्तन के मुख्य क्षेत्रों का नक्शा तीन प्रकार के डेटा स्रोतों पर आधारित है: औपचारिक विशेषज्ञ राय, रिमोट सेंसिंग-आधारित उत्पादों और राष्ट्रीय आंकड़ों के माध्यम से एकत्र हुए डेटा। इस प्रकार के डेटा सीधे वनोन्मूलन और वन के पतन को मापते हैं (कुमार, 2011)।

उपग्रह डेटा, विशेष रूप से लैंडसैट श्रृंखला के सेन्सर (जिसमें टीएम, थीमैटिक मैपरय ईटीएम+, एन्हांस्ड थैमैटिक मैपर प्लसय, ओएलआई, ऑपरेशनल लैंड इमेजर), जो जंगलों के अंत:विषय अध्ययन में महत्वपूर्ण हैं और वनस्पति आवरण में बदलाव की निगरानी, विशेष रूप से उष्णकटिबंधीय जंगलों और उष्णकटिबंधीय संरक्षित क्षेत्रों के अध्ययनों में शामिल हैं। सुदूर संवेदन तकनीक में, अब सेंटिनल-2 डेटा 10 मीटर रिजॉल्यूशन में स्वतंत्र रूप से उपलब्ध है, लेकिन फिर भी हमें शुष्क मौसम में विभिन्न भू-आवरण प्रकारों को अलग करने में कठिनाई हो रही है, साथ ही बरसात के मौसम की छवियां अधिकतर बादल आवरण द्वारा उपयोग लायक नहीं रह जाती हैं। इसलिए, बादल रहित उच्च रेसोलुशन वाले आईकोनोस उपग्रह चित्र और सिंथेटिक एपर्चर रडार (एसआर) डेटा जैसे सेंटिनल 1, (उन्नत सिंथेटिक एपर्चर रडार) एएसएआर, आदि बरसात के मौसम की छवियों के लिए कुछ संभावित समाधान सुझाए गये हैं। लैंडसैट का ताप डेटा, भूमि की सतह से ऊर्जा के उत्सर्जन को मापता है, जो शुष्क वन पारिस्थितिक तंत्रों में वन वृद्धि के सुसंगत चरणों के बीच भेदभाव की क्षमता प्रदान करता है। इस प्रकार सुदूर संवेदन वन प्रबंधन और संरक्षण के लिए आवश्यक विभिन्न वन मापदंडों के आकलन में मदद करता है। वन पारिस्थितिक तंत्र के विभिन्न मापदंडों के आकलन में उपयोग किए जाने वाले कुछ सुदूर संवेदन उपग्रह और संबंधित संस्थानों की सूची तालिका 1 में दर्शाई गई है।

वन मापदंडों के मूल्यांकन के तरीके : चूंकि सुदूर संवेदन तकनीक का उपयोग करके वन मापदंडों के आकलन की सूची काफी लम्बी है, इसलिए सभी संगत तरीकों को यहां विस्तार से समझाना संभव नहीं है। हालांकि, यदि हम संक्षेप में बात करते हैं, तो वन की विशेषता इसकी भौतिक और रासायनिक संरचना है और तरीके जैसे छवि वर्गीकरण, वर्णक्रमीय मॉडलिंग और विकिरण हस्तांतरण मॉडलिंग, इस तरह के आकलन के लिए उपलब्ध हैं। स्पेक्ट्रल एंगल मैपर (एसएएम), सपोर्ट वेक्टर मशीन (एसवीएम), आर्टिफिशियल न्यूरल नेटवर्क (एएनएन), रैंडम फॉरेस्ट आदि जैसे उन्नत वर्गीकरण कलन विधि (एल्गोरिदम) ने वन प्रणाली में भूमि उपयोग और भू-आवरण मैपिंग की सटीकता में सुधार किया है। यहां वन भूमि आवरण मैपिंग के लिए लागू विधियों को विस्तार से प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 1: कुछ वन अनुप्रयोगों और उपग्रह/ संवेदी (सेंसर) की सूची।

वानिकी के मापदंड	संवेदी /उपग्रह	एजेंसी
वन आवरण प्रकार	टीएम, ईटीएम, ओएलआइ/लिस्स, एविफ्स	नासा/इसरो
वन प्रजाति सरंचना	सेंटीनेल-2, हाइपीरियोन ईओ-1	ईएसए /नासा
वन अग्नि शोध	मौडिस - टेरा और एक्वा, वीआईआईआरएस	नासा
वन निगरानी	नोआ-एवीएचआरआर/मौडिस	ईएसए /नासा
वन सड़क योजना	जिओआई-/ कार्टोसैट-2	यूएसए /इसरो
वन्यजीव निगरानी	वर्ल्डव्यू-3	नोआ
जैव ईंधन अनुमान, एल.ए.आई.	टेरा-सार/ एलोस-पल्सार/लैंडसैट/एविफ्स	जर्मन/जेक्सा/ नासा/इसरो
पेड़ ऊंचाई अनुमान	लीडार/पोल-इनसार	नोआ/नासा

नासा= नेशनल एरोनॉटिक्स स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन, ईएसए = यूरोपियन स्पेस एजेंसी, जेक्सा = जापान एयरोस्पेस एजेंसी, इसरो = भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन, यूएसए = यूनाइटेड स्टेट ऑफ अमेरिका, नोआ = नेशनल ओशनिक एंड एटमॉस्फेरिक एडमिनिस्ट्रेशन, लिस्स = लीनियर इमेजिंग सेल्फ-स्कैनिंग, लीडार = लाइट डिटेक्शन एंड रेंजिंग, मौडिस = मॉडरेट रेज़ोल्यूशन इमेजिंग स्पेक्ट्रोरेडियोमीटर, एवीएचआरआर = एडवांस्ड वेरी-हाई-रिज़ॉल्यूशन रेडियोमीटर, वीआईआईआरएस= विज़िबल इन्फ्रारेड इमेजिंग रेडियोमीटर सुइट, एविफ्स = एडवांस्ड वाइड वाइड सेंसर, एलोस-पल्सार= एडवांस्ड लैंड ऑब्जर्विंग सैटेलाइट-फेज ऐरे टाइप एल-बैंड सिंथेटिक एपर्चर रडार, पोल-इनसार = पोलारिमेट्रिक एसएआर इंटरफेरोमेट्री

भूमि उपयोग और भूमि आवरण मैपिंग : वन भूमि उपयोग और भूमि आवरण (एलयूएलसी) मैपिंग, वनों मे होने वाले परिवर्तनों की निगरानी के लिए प्रारंभिक और मानक तरीका है। भूमि उपयोग परिवर्तन और विकास की निगरानी के लिए, एक परिवर्तन खोज विश्लेषण पद्धति का उपयोग करना होता है जो भूमि आवरण की प्रकृति, सीमा और दर का समय एवं स्थान के

[1]वानिकी विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

अनुसार निर्धारण करता है। इसके लिए हाइब्रिड वर्गीकरण दृष्टिकोण जैसे कि उपग्रह इमेजरी का क्षेत्र सर्वेक्षण आंकड़ों के साथ सुपरवाईस्ड क्लासिफिकेशन जो एलयूएलसी कक्षाओं का उत्पादन करने मे सक्षम हैं का इस्तेमाल किया जाता है। प्रत्येक उपग्रह छवि में सभी वर्णक्रमीय बैंडों का उपयोग करके मैक्सिमम लाइकीलीहुड क्लासिफिकेशन तकनीक का प्रदर्शन सुपरवाईस्ड क्लासिफिकेशन में बहुधा उपयोग होने वाली तकनीकी है। यह सबसे व्यापक रूप से अपनाया गया वर्गीकरण एल्गोरिथ्म है। किसी भी क्षेत्र की छवियां तीन चरणों से गुज़ारी जाती हैं जो अध्ययन क्षेत्र की भूमि आवरण कक्षाएं उत्पन्न करती हैं। सबसे पहले (1) फीचर निष्कर्षण, फिर (2) प्रशिक्षण डेटा (सिग्नेचर कक्षाएं) का चयन और अंत में (3) उपयुक्त वर्गीकरण दृष्टिकोण का चयन। इसके अलावा छवि विश्लेषक के ज्ञान, प्रामाणिक स्रोतों से जानकारी और ज़मीनी सच्चाई के दौरान किए गए टिप्पणियों का इस्तेमाल भी किया जाता है। समय-समय पर ज़मीनी डेटा को फील्ड समूहों द्वारा एकत्र किया जाता है और इस ज़मीनी डेटा की जानकारी से प्रशिक्षण डेटा बनाया जाता है साथ ही साथ छवि डेटा से बनी हुई कक्षाओं की सटीकता का आकलन भी सुनिश्चित किया जाता है (फोर्कुओ और फ्रिम्पोंग, 2012)। अन्य तरीकों जैसे की सामान्यीकृत अंतर वनस्पति सूचकांक (एनडीवीआई) आधारित कक्षाएं, सपोर्ट वेक्टर मशीन वर्गीकरण आदि का उपयोग वन भूमि उपयोग और भूमि आवरण मैपिंग (वन एलयूएलसी) के लिए किया जाता है। आगे इन मानचित्रों का उपयोग वन एलयूएलसी परिवर्तन आकलन के लिए किया जा सकता है जिसके लिए कम से कम 2 समय का वन एलयूएलसी होना आवश्यक होता है।

वर्गीकरण सटीकता मूल्यांकन : सटीकता मूल्यांकन वर्गीकरण के बाद की प्रक्रिया है और किसी भी वर्गीकरण परियोजना का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। वर्गीकृत छवि की तुलना एक अन्य डेटा स्रोत से की जाती है जिसे सटीक या ज़मीनी सच्चाई डेटा माना जाता है। सटीकता दृष्टिकोण में से एक कापा कोएफीशियांत मैट्रिक्स होती है। यह सटीकता मूल्यांकन के लिए उपयोग की जाने वाली एक अलग बहुभिन्नरूपी तकनीक है और सबसे व्यापक मानकों में से एक है। भूमि आवरण नक्शों के सटीकता मूल्यांकन या सही होने की पुष्टि के बाद ही वन क्षेत्र में बदलाव का आकलन किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष : वन जैवभौतिक और जैवरासायनिक विशेषताओं की बेहतर समझ के लिए अलग-अलग सुदूर संवेदन उत्पाद तैयार किए जाते हैं। सुदूर संवेदन डेटा जो एक उच्च स्पेशियों-टेम्पोरल रेसोलुशन, विस्तृत कवरेज, और समय के साथ अद्यतन से सुसज्जित होता है का व्यापक रूप से वन परिवर्तन, वन रचना, वन जैव ईंधन और वन कार्बन स्टॉक के विभिन्न पैमानों के मूल्यांकन में उपयोग किया गया है। इसके अलावा, मौजूदा मल्टीस्पेक्ट्रल डेटा की गुणवत्ता में सुधार किया जा रहा है, साथ ही वन मापदंडों के आकलन में लागू की जाने वाली नई सुदूर संवेदन तकनीक जैसे कि हाइपरस्पेक्ट्रल, माइक्रोवेव, लीडार और यूएवी डेटा को वन संसाधन मूल्यांकन के लिए किया जा रहा है। इन दोनों प्रक्रियाओं को भविष्य के लिए सबसे सक्रिय सीमांत माना गया है (लेई शी, 2017)। सुदूर संवेदन के माध्यम से हुए आकलन से स्पष्ट रूप से पता चला है कि वनोन्मूलन खतरनाक उच्च दर पर जारी है, हालांकि वन क्षेत्र का कुल नुकसान धीमा हुआ है। सुदूर संवेदन आधारित आकलन, वन प्रबंधन गतिविधियों जैसी कि वन रोपण, परिदृश्य मरम्मत और परित्यक्त भूमि पर वनों का प्राकृतिक विस्तार आदि की योजना बनाने के लिए भी उपयोग किए जाते हैं। सुदूर संवेदन से प्राप्त आंकड़े वनों के मापदंडों को बहुत तेज़ी से और नियमित अंतराल में कई बार आकलित कर सकते हैं। साथ ही ये बहुत सस्ते में एक बड़े क्षेत्र के सटीक आंकड़े जुटा सकते हैं। इसीलिए सुदूर संवेदन को आज के परिदृश्य मे वनों से संबंधित आंकड़े जुटाने के लिए महत्वपूर्ण साधन समझा जाता है, साथ ही इस क्षेत्र में शोध के लिए असीम संभावनाएं हैं। ●

(पृष्ठ 23 का शेष)

भारतीय कृषक कर्मयोगी भी है और धर्मभीरू भी है। उसकी नाराज़गी उसके लिए अभिशाप है। इस शापभय ने इहलोक में उसे नरक भोगने को विवश कर रखा है। वह कायदे-कानून से भी अनभिज्ञ है इसलिए साहूकार एवं बैंक का कर्ज़दार भी है। निम्न वर्ग का किसान कर्ज़ में जन्म लेता था, साहूकारी-प्रथा में जीवन भर पिसता था और कर्ज़ में डूबा ही मर जाता था। परन्तु अब आधुनिक समय में गांवों में, किसानों के जीवन में, खेती में कई परिवर्तन आए हैं। सरकार ने किसानों/ग्रामीणों के लिए कई लाभकारी योजनाएं आरम्भ की हैं जिनसे किसान फायदा उठा सकते हैं। वे योजनाएं निम्नलिखित हैं : सॉयल हैल्थ कार्ड स्कीम, प्रधान मन्त्री फसल बीमा योजना, नीम कोटेड यूरिया, किसान कल्याण तथा कृषि विकास, एकीकृत बागवानी विकास मिशन, प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, परम्परागत कृषि विकास योजना, कृषि क्लीनिक और कृषि व्यवसाय केन्द्र योजना जैसी कई योजनाएं प्रारम्भ की गई हैं जिनसे लाभ उठाकर किसान तरक्की कर सकते हैं।

पहले के किसान और गांव तथा अब के किसान और गांव में बहुत अन्तर आ गया है। अब किसान बात को समझता है एवं मानता भी है। गांवों में विद्यालय भी खुल चुके हैं। पक्की सड़कें, नालियां, अस्पताल आदि बना दिए गए हैं। प्रौढ़ शिक्षा द्वारा किसानों ने शिक्षा ग्रहण की है। किसानों की सन्तानें भी पढ़-लिख गई हैं। अब किसान को बेवकूफ बनाना सम्भव नहीं है। कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा किसानों को फसलें उगाने में सहायता प्रदान की जाती है। रेडियो एवं दूरदर्शन पर कृषि कार्यक्रमों से किसानों को बहुत लाभ मिलता है। अब किसान शिक्षित है, समझदार है। उसे अपना जीवन-यापन कैसे करना है-यह उसे ज्ञात है। अब किसान और उसका गांव प्रगतिशील है। किसान मेले में हर बार कई किसानों को उनकी अच्छी फसल/फसल विशेषता के कारण सम्मानित किया जाता है- यह उनके परिश्रम का ही फल है।

भोले-भाले कृषक देश के अद्भुत बल हैं।
राजमुकुट के रत्न कृषक के श्रम के फल हैं।।
कृषक देश के प्राण, कृषक खेत की कल हैं।।
राजदण्ड से अधिक मान के भाजन हल हैं।।

जय जवान! जय किसान !! जय विज्ञान !!!

(पृष्ठ 24 का शेष)

ग्रहण कर लेते हैं। जिससे पैदावार कम मिलती है। किसान का उद्देश्य खरपतवारों को चारे की तरह प्रयोग करना रहता है। जो कि अवैज्ञानिक विधि है। अत: समय पर खरपतवार नियंत्रण अति आवश्यक है। इसके लिए पहिए वाला कसौला व ब्लेड हो का प्रयोग करना चाहिए ताकि खरपतवार नियंत्रण के साथ-साथ अच्छी नमी का संरक्षण भी हो सके।

पौध संरक्षण : शुष्क क्षेत्रों में सावनी फसलों पर प्राय: कीटों व बीमारियों का प्रकोप होता रहता है। अत: इन फसलों को कीटों व बीमारियों से बचाने के लिए समय-समय पर पौध संरक्षण करना अति आवश्यक है ताकि अधिक से अधिक पैदावार मिल सके।

कटाई: बाजरा व मूंग सितम्बर के महीने में पक कर तैयार हो जाता है। दराती की सहायता से इन्हें काटें व खेत में सुखाकर दानों को निकाल लें। ग्वार की फसल की कटाई उस समय करें जब इसकी पत्तियाँ पीली पड़ कर झड़ जाएं तथा फलियों का रंग भूसे जैसा हो जाए। फसल पकने के तुरन्त बाद काट लें ताकि बीज नीचे न गिरें। ●

खरीफ मूंग की उन्नत खेती : समुचित पोषक तत्व प्रबंधन

✍ पूजा रानी, नरेंदर कुमार एवं विकास कुमार
कृषि विज्ञान केंद्र, सदलपुर
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

मूंग हरियाणा प्रदेश की महत्वपूर्ण दलहनी फसलों में से एक है। इस फसल की औसत उपज बहुत कम है क्योंकि यह फसल कम उपजाऊ भूमि में बोई जाती रही है। फिर भी वर्तमान किस्मों के साथ यदि खेती के उन्नत तरीकों को अपनाया जाए तो इस फसल की उपज काफी हद तक बढ़ाई जा सकती है। यदि मूंग को फसल चक्र में अपनाया जाए तो अन्य फसलों की पैदावार बढ़ाने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है क्योंकि मूंग कम अवधि की फसल है। इसके उगाने में कम खर्च आता है व साथ ही ज़मीन की उपजाऊ शक्ति भी बढ़ाता है इसलिए फसल चक्र में इसका महत्वपूर्ण स्थान है।

मूंग की खेती खरीफ, बसंत व ग्रीष्मकालीन मौसम में सफलतापूर्वक की जा सकती है। मूंग की फसल लेने के लिए निम्नलिखित किस्में उचित हैं : बसंती, एम एच 421, एम एच 318। खरीफ मूंग की उन्नत खेती के लिए निम्न सस्य क्रियाएं अपनाई जा सकती हैं।

बिजाई का समय : खरीफ मूंग की बिजाई जुलाई के पहले सप्ताह में मानसून की वर्षा के साथ ही कर देनी चाहिए। मूंग के लिए बीज की मात्रा 6 से 8 किलोग्राम प्रति एकड़ डालने की सिफारिश की जाती है। अच्छी उपज के लिए उपयुक्त फासला रखना आवश्यक है। आवश्यकता से अधिक या कम पौधों की संख्या से उपज कम मिलेगी। उचित फासले के साथ ही पौधे के आसपास का सूक्ष्म वातावरण उचित बना रहेगा तथा पौधे की बढ़वार और पैदावार भी अच्छी होगी। इस फसल की पंक्तियों में 30 से 45 सैंटीमीटर की दूरी रखकर बिजाई करें। अरहर या नरमा की फसल की कतारों के बीच मूंग की दो या तीन कतारें निकालकर भी अच्छी फसल ली जा सकती है। यदि खेत में पौधे अधिक हो तो पौधे से पौधे का अंतर 10 सैंटीमीटर रखकर छंटाई कर दें।

भूमि व खेत की तैयारी : इस फसल के लिए अच्छे जल निकास वाली दोमट से हल्की दोमट मिट्टी अधिक उपयुक्त हैं। दो जुताइयां करें व हर जुताई के बाद सुहागा लगाकर खेत को अच्छी तरह तैयार करें खेत समतल हो व ढ़ेले तथा घास फूस नहीं होने चाहिएं।

राइजोबियम टीके से बीज का उपचार : मूंग के लिए राइजोबियम कल्चर के टीके तैयार किए गए हैं। यह टीके विश्वविद्यालय के किसान सेवा केंद्र से प्राप्त किए जा सकते हैं। एक टीका (50 मिलीलीटर) प्रति एकड़ बीज के लिए पर्याप्त है। एक खाली बाल्टी में दो कप (200 मिलीलीटर) पानी में 50 ग्राम गुड़ घोलिए। एक एकड़ के बीज पर गुड़ का घोल डालें और ऊपर से राइजोबियम का टीका छिड़क के बीजों को हाथ से अच्छी तरह मिला लें तथा बिजाई से पहले बीज को छाया में सुखा लें।

सिंचाई : खरीफ मूंग में यदि उचित समय पर बारिश हो तो कोई सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती, लेकिन फसल की बढ़वार के समय यदि काफी समय तक बारिश न हो तो एक सिंचाई आवश्यक है।

पोषक तत्वों का प्रबंधन : मूंग की फसल में बिजाई के समय 6-8 किलोग्राम नाइट्रोजन अर्थात 13-17.5 किलोग्राम यूरिया और 16 किलोग्राम फास्फोरस अर्थात 100 किलोग्राम सिंगल सुपर फास्फेट आरंभिक मात्रा के रूप में प्रति एकड़ के हिसाब से खेत में डालें। 35 किलो ग्राम डीएपी डालने की स्थिति में यूरिया डालने की आवश्यकता नहीं है। निम्न व मध्यम स्तर वाली ज़मीन में 8 किलोग्राम पोटाश अर्थात 14 किलोग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति एकड़ की दर से बिजाई के समय डालें। किसान यह ध्यान रखें की मूंग एक दलहनी फसल है, इसकी जड़ों की ग्रंथियों में वायुमंडल से नाइट्रोजन एकत्रित करने वाले जीवाणु होते हैं जो पौधे की आवश्यक नाइट्रोजन को वायुमंडल से प्राप्त कर लेते हैं। अत: इस फसल में सिफारिश की गई मात्रा से अधिक यूरिया न डालें या खड़ी फसल में यूरिया का छिड़काव न करें। ऐसा करने से फसल की बढ़वार अधिक हो जाएगी तथा फसल पर बीमारियों व कीड़ों का आक्रमण अधिक होगा।

हानिकारक कीड़े : इस फसल को बालों वाली सूंडी, पत्ता छेदक, हरा तेला और सफेद मक्खी हानि पहुंचाते हैं।

1. बालों वाली सूंडी : इस कीट की सूंडिया जब छोटी अवस्था में होती हैं तो यह इकट्ठी रहकर पत्तों का निचले स्तर पर नुकसान करती हैं। तथा पत्तों को छलनी कर देती है। इन सूंडिया के प्रौढ़/पतंगे रोशनी की तरफ आकर्षित होते हैं इसलिए इनकी रोकथाम के लिए लाइट ट्रैप का उपयोग किया जा सकता है। खेतों के आसपास खरपतवारों को ना रहने दें क्योंकि यह कीड़े उन पर अंडे देते हैं। कीटों के अंडों के समूह को नष्ट करें, पत्तों को छोटी सूंडिया सहित तोड़ दें और ऐसे पत्तों को ज़मीन में गहरा दबा दें या मिट्टी के तेल के घोल में डालकर उन्हें मार दे। बड़ी सूंडियों को भी कुचल कर नष्ट कर दें, बड़ी सूंडियों की रोकथाम के लिए 250 मि.ली मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. या 200 मि.ली डाईक्लोरवास (न्यूवान) 76 ईसी या 500 मि.ली क्विनल्फॉस 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

इसी तरीके से पत्ती छेदक का भी समाधान होगा

2. हरा तेला और सफेद मक्खी : हरा तेला और सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मेलाथियान 50 ई.सी. या 250 मि.ली. डाईमेथोएट 30 ई.सी या 250 मि.ली. मेटासिस्टॉक्स 25 ई.सी को 250 लीटर पानी में मिलाकर 2 से 3 हफ्ते के अंतर पर प्रति एकड़ छिड़काव करें। इन छिड़कावों से विषाणु रोग का फैलाव भी कम हो जाएगा।

निराई तथा गुड़ाई : खरपतवारों की रोकथाम के लिए दो बार निराई-गुड़ाई करनी चाहिए। पहली निराई 20 से 25 दिनों बाद तथा दूसरी निराई 30 से 35 दिनों बाद आवश्यक है।

बीमारियां

पत्तों का धब्बा रोग : पत्तियों, तनों व फलियों पर कोनदार व भूरे लाल रंग के धब्बे जो बीच में से भूरे रंग के और किनारों पर लाल जामुनी रंग के होते हैं, दिखाई देते हैं। इस रोग के नियंत्रण के लिए ब्लाइटॉक्स-50 या इंडोफिल एम-45 की 600-800 ग्राम मात्रा को 200 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।

पत्तों का जीवाणु रोग : पत्तों की सतह के नीचे छोटे-छोटे बिंदु नज़र आते हैं। जिसके आसपास के तंतु गल जाते हैं। रोकथाम हेतु फसल पर कॉपर ऑक्सिक्लोराइड की 600 से 800 ग्राम मात्रा को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

जड़ गलन : रोगी पौधे पीले व सिकुड़े दिखाई देते हैं व जड़ें गलने लगती हैं। रोग की अधिकता होने पर सारा पौधा नष्ट हो जाता है, रोकथाम के लिए बिजाई से पहले 4 ग्राम थाइरम प्रति किलो बीज की दर से सूखा बीज उपचार करें व तीन साल का फसल चक्र अपनाएं।

पीला मोज़ैक : रोग से प्रभावित पौधे के पत्ते कहीं-कहीं से पीले व हरे नजर आते हैं। रोग की अधिकता हो जाने पर सारे पत्ते पीले पड़ जाते हैं व पैदावार बहुत कम मिलती है। इसकी रोकथाम के लिए रोग रोधी किस्में ही लगाएं। सफेद मक्खी इस रोग को फैलाती है अत: सफेद मक्खी की रोकथाम करने के लिए खेत में बिजाई के बाद 10 से 15 दिनों के अंतर से 400 मि.ली. मेलाथियान 50 ई.सी. या 250 मि.ली. डाईमेथोएट 30 ई.सी या 250 मि.ली. मेटासिस्टॉक्स 25 ई.सी को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। रोगी पौधों को जड़ से उखाड़ कर नष्ट कर दें। फसल में खरपतवारों को समय से निकाल दें। ●

लू लगने के कारण और उनका उपचार

✍ संतोष रानी, पूनम यादव[1] एवं संदीप भाकर
कृषि विज्ञान केंद्र, फतेहाबाद
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

गर्मी का मौसम आ चुका है और पारा तेज़ी से बढ़ रहा है। गर्म हवा और लू से हाल बेहाल हो रहा है। ऐसे में खुद को भीतर से ठंडा रखना किसी चुनौती से कम नहीं है। ऐसा पहली बार नहीं है, गर्मी हमेशा तीखी धूप, गर्म हवा तथा अन्य कई तरह की परेशानियों के साथ ही आती है। तेज़ गर्मियों के दौरान लू लग जाना सबसे सामान्य समस्या है। लू के कारण न हम निश्चिंत होकर बाहर जा पाते हैं और न ही चैन से घर में रह पाते हैं। इनसे बचने के हम चाहे जितने भी उपाय कर लें, ये गर्म हवाएं हमारा पीछा कहीं नहीं छोड़ती हैं। यहां तक कि घर में भी लू लगने का खतरा बना रहता है।

लू लगने के कारण : लू (हीटस्ट्रोक) एक ऐसी अवस्था है, जो अक्सर शरीर के तापमान-नियामक तंत्र की विफलता के कारण होता है, जब अत्यधिक उच्च तापमान का संपर्क होता है। कुछ लोगों की लू लगने के कारण मृत्यु भी हो जाती है। अब सवाल यह उठता है कि कुछ लोगों की ही क्यों लू लगने पर मृत्यु होती है। इसका कारण हमारे शरीर का तापमान है, जो कि हमेशा 37 डिग्री सेल्सियस होता है। इस तापमान पर ही हमारे शरीर के सभी अंग सही तरीके से काम करते हैं। गर्मी के मौसम में हमारा शरीर पसीने के रूप में पानी बाहर निकालता है। इस प्रक्रिया के कारण गर्मी में भी हमारे शरीर का तापमान सही रहता है। लेकिन इस प्रक्रिया को लगातार बनाये रखने के लिए आपको पसीना निकलते वक्त भी पानी पीते रहना आवश्यक है। लेकिन जब बाहर का तापमान 45 डिग्री के ऊपर चला जाता है, तो शरीर के तापमान को सही रखने के लिए अतिरिक्त पानी की आवश्यकता पड़ती है और जब शरीर में पानी की कमी हो जाती है या किसी अन्य वजह से व्यक्ति कूलिंग व्यवस्था ठप्प हो जाती है, जब शरीर का तापमान 37 डिग्री सेल्सियस से बढ़कर 42 डिग्री सेल्सियस तक पहुंच जाता है, उस अवस्था में रक्त गरम होने लग जाता है और जिसकी वजह से रक्त में उपस्थित प्रोटीन पकने लगता है। व्यक्ति का स्नायु कड़क होने लगता है। शरीर में पानी कम होने के कारण रक्त गाढ़ा होने लगता है। इतना ही नहीं व्यक्ति का ब्लडप्रेशर कम हो जाता है और शरीर के महत्वपूर्ण अंग खासकर ब्रेन तक ब्लड सप्लाई अवरोधित हो जाती है। ऐसे में व्यक्ति कोमा में भी चला जाता है। उसके शरीर के अंग कुछ क्षणों में काम करना बंद कर देते हैं और व्यक्ति की मृत्यु तक हो जाती है। इसलिए गर्मी से बचने तथा लू लगने पर क्या करें, इसकी जानकारी होना बहुत आवश्यक है।

लू लगने के लक्षण : लू लगने पर शरीर का तापमान अचानक से बहुत बढ़ जाता है, जिसमें तेज़ बुखार के साथ, सांस लेने में तकलीफ, उल्टी और चक्कर आना, दस्त, सिरदर्द, शरीर टूटना, बार-बार मुंह सूखना, बार-बार प्यास लगना और कमज़ोरी जैसे लक्षण दिखते हैं। कभी-कभी आंखों, हाथों और तलवे में जलन होने लगती है। इससे इंसान बेहोश तक हो जाता है। लू का समय पर इलाज न होने पर लो बीपी से लेकर, ब्रेन या हार्ट स्ट्रोक तक भी हो सकता है।

लू लगने पर क्या करें (लू लगने पर घरेलू उपचार) : मस्तिष्क और महत्वपूर्ण अंगों द्वारा सुचारू रूप से काम करने के लिए शरीर का सामान्य तापमान पर होना अति आवश्यक होता है, विशेष रूप से गर्मियों में क्योंकि इस समय बाहर अधिक तापमान हो जाने के कारण, शरीर के तापमान को ठंडा करने के लिए उपचार की आवश्यकता होती है। ऐसा करने के लिए, आप कुछ आसान घरेलू उपाय का उपयोग कर सकते हैं :

- ऊष्माघात स्थिति में सबसे पहली प्रक्रिया प्राथमिक उपचार की पेशकश की होती है। प्राथमिक उपचार की प्रक्रिया में सबसे आवश्यक होता है शरीर के तापमान को कम करना। इसके अंतर्गत लू लगने की स्थिति में सबसे पहले मरीज़ को छांव में बिठाएं। उसके कपड़े को ढीला कर दें और ठंडा कपडा उसके शरीर पर रखें। मरीज़ के पैरों और हाथों की मालिश करें।
- मरीज़ के शरीर में पानी की कमी न होने दें। मरीज़ को ठंडा पानी बिल्कुल भी न दें, क्योंकि बीमारी बढ़ सकती है। लू में उबालकर ठंडा किया हुआ पानी ही मरीज़ को दें। नींबू पानी और इलेक्ट्रॉल का घोल भी समय-समय पर पीने के लिए देना चाहिए। तेज़ बुखार होने पर ठंडे पानी से पट्टी करें, बुखार कम हो जायेगा। गीले तौलिए से मरीज़ के शरीर को दिन में तीन से चार बार अवश्य ठंडा करते रहना चाहिए। यह शरीर के तापमान को सामान्य करने में मदद करेगा।
- प्याज़ जो कि खाना बनाने के लिए हर घर में इस्तेमाल होता है, जिसके कारण यह आसानी से तुरन्त मिल भी जाता है। घरेलू इलाज के तौर पर प्याज़ लू लगने पर रामबाण इलाज के तौर पर काम करता है। प्याज़ के रस को कनपट्टी और छाती पर मलने से तुरन्त राहत मिलती है।
- दो ग्राम जीरा, लौंग और पुदीने के दस पत्ते को लेकर पीस लें। फिर आधे गिलास पानी में मिलाकर मरीज़ को पिला दें।
- यदि मरीज़ को कफ बन रहा हो, तो प्याज़ के रस को गर्म करके रोगी को पिला दें। कफ निकल जायेगा।
- एक कच्चा प्याज़ और एक भूना प्याज़ लेकर दोनों को महीन पीस लें। उसमें दो ग्राम जीरे का पाऊडर और बीस ग्राम मिशरी मिलाकर मरीज़ को दिन में एक बार दें।
- मरीज़ को जल्द आराम के लिए हरे आम के पल्प में पकी इमली मिलाकर दें। इमली को गर्म पानी में मिलाकर भी दे सकती हैं।
- बेल का शरबत बहुत फायदेमंद होता है। लू लगाने पर मरीज़ को यह नियमित रूप से पिलाएं।
- लू के रोगी को अधिक तला-भूना तथा मिर्च-मसाले वाला खाना खाने से परहेज़ करना चाहिए। खाना ऐसा हो जो आसानी से पच जाए जैसे कि खिचड़ी, दलिया आदि।
- शरीर की गर्मी दूर करने के आसान उपायों या गर्मी से बचाव के उपायों में एक आसान तरीका यह भी है कि आप अपने दोनों हाथों की कलाइयों पर 10 सेकेंड तक ठंडा पानी डालते रहें। इससे कम से कम आपको एक घंटे तक गर्मी से आराम मिलेगा।
- आम पन्ना घर पर बनाकर पीएं। इसके लिए दो चार कच्चे आम लें, उन्हें उबालें और थोड़ी देर के लिए ठंडे पानी में भिगो दें। अब आम का गूदा निकालकर इसमें जीरा, नमक, गुड़, काली मिर्च, धनिया और पानी मिलाएं, इस मिश्रण को तीन से चार बार पीएं एवं पिलाएं।
- धनिया के पत्ते के जूस में थोड़ी चीनी मिलाकर पीएं या फिर धनिया या पुदीने की चटनी खाएं। लू लगने पर यह सबसे आसान और प्रभावी उपचार का काम करता है।
- शरीर में पानी की कमी न होने दें। प्रतिदिन 5-6 लीटर पानी पीएं। उबाल कर ठंडा किया हुआ पानी सेहत के लिए अधिक फायदेमंद होता है।
- धूप/लू से बचने के लिए हर संभव प्रयास करना चाहिए। दोपहर 12 से 3 बजे के बीच घर, ऑफिस के अंदर ही रहें, क्योंकि इस समय बहुत तेज़ धूप हो जाती है। गर्म हवाएं भी चलने लगती हैं।
- अगर दोपहर में जाना बहुत आवश्यक हो तो घर से निकलने से पहले सूती कपड़ा या स्कार्फ को गीला करके सिर पर बांधने से भी गर्मी से राहत मिलती है। गर्मी से बचने के लिए अपने होठों और आंखों को भी नम रखें। पानी या मठ्ठा पीकर निकलें। ●

[1]कृषि विज्ञान केंद्र, महेंद्रगढ़

Benefits of Crop Residue Management

✍ **N. K. Goyal, Sandeep Rawal and Sube Singh**[1]
Krishi Vigyan Kendra, Damla (Yamunanagar)

Plant residue are crop materials such as stems, leaves and roots, that are left on the field after the harvest. Crop residues are materials left on cultivated land after the crop is harvested. Crop residue burning is convenient to the farmers, because of a narrow window between the wet season harvest and the dry season cropping, forcing the farmers to burn the residues to vacate the fields. However, today this practice is not recommended and is not being used by farmers. Crop residues of common agricultural crops are important resources, not only as sources of nutrients for succeeding crops and hence agricultural productivity, but also for improved soil, water and air quality. Removing crop residues affects water and nutrient cycling,which if not accounted for, can have unexpected consequences on other crop production factors.

Enriching the soil health and quality : Generally, the incorporation of crop residues increases soil porosity, especially the large pores of soil and reduce soil bulk density, regardless of tillage operations. It is clear that residue retention has a positive effect on long-term soil quality. Residue mineralization leads to more nutrients availability for the crop plants besides, it also supplies organic matter to the soil, which modifies the soil structure and thereby helps in development of root system. Good residue management practices on agricultural lands have many positive impacts on soil quality crop residues incorporated into soil, are mineralized by the soil biota to form plant nutrients required for plant growth that can be easily taken up by the plants.

Role in water conservation : Crop residue acts as mulch, which reduces erosion and runoff losses and increases the permeability of soil thus helps in conserving soil moisture. In the drier parts of country, crop residues can serve as good mulch material to moderate the soil temperature, better penetration and conservation of rain water for growing crops with better yields. Crop residues protect the soil from wind and water erosion and sun's high radiation under zero tillage, while improving nutrient efficiency, water economy and soil structure. Under zero tillage, crop residues reduced evaporation and maintained moisture fluctuations. The crop residue amount increasing on the soil surface, reduces the evaporation rate. Consequently, the application of crop residue is the best practice to add organic amendment in soil and cover its surface. For obtaining sustainable development, crop residue properly manages to simultaneously increase soil organic carbon, soil nutrients, water availability and productivity requirement as well as livestock fodder. Crop residues act as tiny dams to slow water runoff from the field, allowing the water more time to soak into the soil. This soaking effect, known as infiltration, is also increased by channels (macropores) created by earthworms and old plant roots that are left intact. All help significantly to reduce or eliminate water runoff from a field.

Crop residue as a potential source of energy as well as amendments : Crop residues could be used as an alternative fuel and a potential source of energy production. Besides, its energy potential can also be used as a source of soil amendment, biomass feedstock for livestock and an alternate to chemical fertilizers. Such beneficial effects could have lost under field burning practice of crop residues.

Enriching the environmental health and quality : Crop residue retention offers several environmental and ecological benefits for the soil-water-plant system, including improved soil structural quality. Crop residues management with its potential ability to offset the fossil fuel demands and consequent reduction in carbon-di-oxide emission due to proper *in-situ* incorporation of residue improves the environmental quality, would have otherwise severely affected underfield crop residue burning practice.

Improving the socio-economic health of the society : Maintaining and managing crop residues in agriculture can be economically beneficial to many producers and more importantly to society. Crop residues affect the crop production significantly when used in association with other agricultural practices such as crop rotation and zero tillage. If the residue is used for fertility enhancement purposes than it reduces the huge cost on fertilizers and other amendments, which ultimately saves the farmers' money. As a source of energy it can save upon the expenses incurred on fuels to run the agricultural equipments. Biomass can provide added income to farmers without compromising the production of main food and even non-food crops. The use of biomass i.e., crop residues as raw materials for bio-energy production should be encouraged for a secure energy supply and reduction in fossil fuel CO_2 emissions. Proper crop residue management practices improve the environmental, human and animal health. Environment related hazards created due to faulty agricultural practices *viz.,* crop residue burning on

[1]Assistant Director (Extn. Edu.), CCSHAU, Hisar

the field could be reduced by adopting suitable strategies for residue management, which in turn leads to healthy life as well as saving of large expenses of the society on health related issues raised from environmental illness.

Effect of residue on SOC, SOM and soil nutrients : The incorporation of crop residue either partially or completely in the field depends upon cultivation method. Crop straw incorporation improves soil organic carbon and soil nutrients contents. It is beneficial for recycling nutrients residue, ploughing is important in immobilization of nutrients (especially nitrogen), and the better ratio of C : N needs to be corrected by applying extra nitrogen fertilizer at the time of residue incorporation. Incorporation of crop residues may be a sustainable and cost-effective management practice to maintain the soil eco-system, organic carbon of soil levels and to increase soil fertility. Decomposition of crop residues retained on the soil surface also influences nutrient cycling in the soil and the availability of nutrients to the crop. Finally, minimum soil disturbance and the presence of a residue cover may enhance soil carbon storage, contribute to the reduction of weed infestation and increase soil biological activity. Two significant advantages of surface-residue management are increased organic matter near the soil surface and enhanced nutrient cycling and retention. In addition to the altered nutrient distribution within the soil profile, changes also occur in the chemical and physical properties of the soil.

Improved residue management and reduced tillage practices should be encouraged because of their beneficial role in reducing soil degradation and increasing soil productivity. It enriches the soil with organic matter, improves its biological activity, provides better accessibility of nutrients and enables biological water drainage on heavier soils. It also has a favourable impact on both heavy and sandy soils and is strongly recommended on soils fertilized only with chemical mineral fertilizers. Crop residue on the soil surface are responsible for cooling the soil, increasing the soil moisture and limiting evaporation; crop residue protects the soil from erosion and serves as a source of carbon. Mulching with crop residues limits soil water evaporation and soil crusting, thereby increasing soil water infiltration and soil water availability to the crop. Residue cover provides physical soil protection from water runoff and minimizes the risks of water and wind erosion. Farming costs such as labour, machinery costs and fuel are reduced. Retention of crop residues after harvesting is considered to be an effective anti-erosion measure.

Diversification of Rice-Wheat System in Haryana through Maize : Scope and Utilization

✍ **Preeti Sharma, M. C. Kamboj and Narender Singh**
Regional Research Station, Karnal
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

In India maize is the third most important cereal food crop after rice and wheat. It is one of the most important and accepted worldwide cereal crop in agriculture economy, after wheat and rice as it is a high-yielding, adaptable and fast-growing important cereal crop. It plays a significant role in human, livestock nutrition and a source of large number of industrial products worldwide. It is used as human food (24%), animal feed (11%) and poultry feed (52%). In India, there are different maize based cropping systems and among them maize-wheat ranks 1st having 1.8 m ha area mainly concentrated in rainfed ecologies and is the 3rd most important cropping systems in India. The other major maize systems in India are maize-mustard, maize-chickpea, maize-maize, cotton-maize, etc. Recently, due to changing scenario of natural resource base, rice-maize has emerged a potential maize based cropping system in peninsular and eastern India. In *peri*-urban interface, maize based high value intercropping systems are also gaining importance due to market driven farming. Further, maize has compatibility with several crops of different growth habit that led to development of various intercropping systems in our country. Maize has wider adaptability and compatibility under diverse soil and agro-climatic conditions and hence, it is cultivated in sequence with different crops under various seasons and agro-ecologies of the country. Hence, it is considered as one of the potential driver of crop diversification under different situations.

Haryana played a key role in making the country self-reliant in food production through Green Revolution. Hard working, dynamic and resilient farmers of the state have played important role in transforming the nation from a 'food deficit' to 'food surplus' country. In Haryana, maize is grown mainly for fodder purpose (15000-20000 ha) while area of maize for grain purpose is very low (6000 ha) during **kharif** season. It is because of assured marketing of rice as compared to maize. Over the

decades, farmers in Haryana adopted rice-wheat system because earlier maize cultivars were low yielding having lots of pest problem and farmers shifted to rice due to better economic returns. But, now the scenario in the maize has changed and high yielding hybrids with least pest problems are available for the state having yield potential of more than 50-60 q/ha at the farmers' field.

In addition, the extensive cultivation of high yielding wheat and rice has caused overexploitation of the precious natural resources particularly water and soil. Cultivation of rice during **kharif** season in Haryana over a period of 5 decades has led to one of the major serious concerns of lowering ground water table which can be addressed through diversification. Burning of rice straw is another major issue particularly in Haryana and the nation as a whole due to the very short window available between harvesting of rice and sowing of wheat. These major concerns of decreasing underground water table, increased power requirement, deteriorations in soil health and structure and resistance in *phalaris minor* against the weedicide in predominant rice adoption in Haryana led to shift from rice cultivation to other high yielding **kharif** crops. Being the only solution crop when state needs to diversify from rice, maize is the most suitable alternative crop that holds promising potential crop for diversification of rice for addressing water saving, soil health, environmental pollution and employment generation in Haryana. Being a less water demanding crop, shifting from rice to maize could immediately address the issue of declining water table. Maize based conservation agriculture can help in maintaining the soil fertility and soil eco-system. Maize cultivation will also enable the farmers to achieve reduced cost of electricity on water pumping, less risk of terminal heat stress in wheat due to advanced planting, reduced groundwater pollution because of less use of pesticides in maize production, etc. The cultivation of spring maize after harvest of potato is now became reality in north Indian states like Punjab, Haryana and western Uttar Pradesh and giving more productivity. The silage prepared from maize is of best quality and is highly preferred over silage of other crops. Hence, the cultivation of fodder and silage maize is another avenue to bring crop diversification. Establishment of linkages between the speciality corn (baby corn and sweet corn), fodder and silage cultivation farms and dairy farms could further boost livestock industry and will also ensure better remuneration to maize farmers.

Often there is a yield gap in the potential and actual yield of maize in farmers' field, which hinders in wider adoption by the farmers. The required technologies like suitable high yielding single cross hybrid maize cultivars, efficient weed management system, machineries for mechanized cultivation of maize and conservation agriculture practices are available to promote maize as an alternative crop for crop diversification. Thus, timely availability of hybrid seeds of high yielding varieties to the farmers has to be ensured to achieve maize as a suitable option to replace rice cultivation. Appropriate policy and programme interventions from the government are taken up to make an impact in favour of crop diversification through maize. One of the major stimuli to farmers is assured market through government procurement of maize at minimum support price (MSP) as in the case of rice and wheat. Development of proper infrastructure is another aspect, which can promote maize diversification particularly for speciality corns like sweet corn, baby corn and popcorn as the demand for these is increasing day by day in the country.

One of the major drawbacks of maize cultivation is lesser mechanization of maize farming as compared to rice and wheat. Promotion of mechanized maize cultivation through arrangement of machines like maize planter, combine harvester, dehusker, maize sheller and maize grain dryers, etc. to the farmers on custom-hire basis, will help to achieve the goal. Establishment of enduser industries like maize based food, feed and starch industries and storage facilities would promote entrepreneurship and attract investment in agriculture and create competition in the market. It will also help in achieving the target of raising farmers' income and reducing the stress on natural resources much faster. To combat the above-said problems, there is a need to rework government's strategies and programmes to achieve significant enhancement in maize cultivation in the state.

Save Paddy Crop from Diseases

✍ **Fateh Singh, Aditya[1] and J. N. Bhatia[2]**
Krishi Vigyan Kendra, Kurukshetra
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Rice is the major cereal crop grown all over Haryana. An excellent economic return can be obtained from rice cultivation provided the farmers follow scientific method of cultivation. Several diseases have been found to attack this crop and some of these are responsible for serious yield losses particularly, if control measures are not adopted timely. Important diseases of rice are being described below :

1. Root Rot/Bakane (*Fusarium moniliforme*)

Symptoms : The disease can even be located in the nursery itself. Affected seedlings are pale yellowish green, thin and elongate abnormally. Older plants are taller than normal ones, have pale tillers and usually die before producing grains. Such plants also produce adventitious roots on one or more nodes above water level.

Control Measures

- Treat the seeds by soaking in Bavistin @ 10 g and 1 g streptocycline in 10 liters of water for 24 h.
- Always uproot nursery in standing water.
- Do not transplant affected nursery.
- Apply Carbendazim @1g/sq. m area by mixing uniformly in the sand prior seven days before uprooting the nursery.
- Avoid excessive nitrogenous fertilizers.
- Affected plants should be uprooted and brunt.
- Do not use the seeds of affected plots in next year.

2. Blast (*Pyricularia grisea*)

Symptoms : The disease affects all aerial parts of the plant. It is most conspicuous on leaf, blade, nodes and neck. Spindle shaped or eye shaped lesions with grayish centre and brown margin appear on leaves at the maximum tillering stage. Damage is most serious when the nodal portion becomes black and brittle and the culms may break at the affected nodes. Brown to black lesions also appear on the neck causing girdling and the panicle breaks over. If the attack occurs when the ear is just emerging, the grains will be empty resulting into chaffy and white earheads.

Control Measures

- Always use healthy seeds.
- Treat the seeds by soaking in Bavistin @ 10 g and 1 g Streptocycline in 10 liters of water for 24 h.
- Transplant seedlings up to 15th July.
- Destroy infected paddy nursery in the field.
- Proper nitrogen management : Delay or withhold the subsequent doses of nitrogen, if disease noticed or environmental conditions, are favourable for the disease.
- Care should be taken that there should be no drought in the field at the time of earing.
- Spray the crop immediately after the appearance of the disease (2-3 active lesions/hill) with beam (Tricyclazole) @ 120 g or Bavistin 200 g (Carbendazim)/acre dissolved in 150-200 liters of water.
- To avoid neck infection, spray the crop either of the above fungicides at 50% flowering.

3. Sheath Blight (*Rhizoctonia Solani*)

Symptoms : Sheath blight is one of the most economically significant rice diseases. The fungus affects the crop from tillering to heading stage. Initially the symptoms are formed on leaves sheath near water level. Oval or elliptical or irregular greenish grey spots are formed. As the spots enlarge, the centre becomes grayish white with an irregular blackish brown or purple brown border. Lesions on the upper part of the plants extend rapidly coalescing with each other to cover the entire tillers. The presence of several large lesions on leaf sheath usually causes death of whole leaf and in severe cases all the leaves of a plant may be blighted causing substantial yield losses.

Control Measure

- Eliminate weed hosts especially dhoob grass on the bunds.
- Avoid excess doses of fertilizers.
- Adopt optimum spacing.
- Avoid flow of irrigation water from infected to healthy fields.
- Deep ploughing in summer and burning of stubbles.
- Spray the crop either with Carbendazin @ 0.2% or Propiconazol (25% EC) 200 ml or Valibamycin (3% L) in 150-200 litres of water per acre.

[1]M. Sc. Student (Plant Pathology)
[2]Retired Professor (Plant Pathology), CCSHAU, Hisar

4. Bacterial Leaf Blight (*Xanthomonas oryzae*)

Symptoms : The disease is characterized by linear, yellow to straw coloured lesions progressing from tip downwards. The margin of the blighted areas is typically wavy in nature. Often amber coloured bead-like bacterial exudates are present on leaves. In systemic infection, young plants are infected in which leaves turn grey, roll completely, drop and tillers wither away. Grains get partially filled or become chaffy.

Control Measures

- Use certified seeds. The disease can be partially controlled by seed treatment with Streptocycline in 1 g in 10 liters of water for 24 hours.
- Raising seedling in upland nursery.
- Apply only recommended doses of fertilizers.
- Avoidance of use of excess nitrogen, dense transplanting, water logging and field to field irrigation, pruning of leaves and growing rice under shady conditions.
- Grow resistant varieties.

5. False Smut (*Ustilaginoidea virens*)

Symptoms : This disease appears on the ears where individual ovaries are transformed into large velvety green mass which are round to oval. Usually only few grains are affected in the ears. The disease produces more if high humidity, rain and cloudy weather prevail during flowering.

Control Measures

- Use of seeds obtained from disease free fields.
- Always apply balanced and judicious doses of fertilizers.
- Do not apply nitrogenous fertilizers after six weeks of transplanting.
- The disease can be effectively controlled by spraying the crop at 50% flowering with 500 ml Copper Oxychloride (Blitox 50% WP) dissolved in 150-200 liters of water/acre.

6. Brown Spot (*Helminthosporium oryzae*)

Symptoms : The characteristic symptom occurs on leaf as circular to oval dark brown, purplish brown spots. A yellow halo is present around spots. The disease also appears on the coleoptile, leaf sheaths, panicle branches and glumes. Black or dark brown spots appear on the glumes and in severe cases the whole surface may be coated with dark brown spores. The seeds become shriveled and discoloured. This disease usually occurs on light soils and neglected fields.

Control Measures

- Treat the seeds as indicated in blast disease.
- Spray the crop with Mancozeb @600 g dissolved in 150-200 liters of water per acre. Repeat the spray after 10 days, if necessary.
- Provide well balanced nutrients for the soil.
- Avoid water stress conditions.

7. Stem Rot (*Sclerotium oryzae*)

Symptoms : The first symptom appears as small, black, irregular lesions on the outer leaf sheath near the waterline which spread and sheaths begin to rot. Numerous black round shining bodies (*Sclerotia*) are formed on the affected sheath and stems and also inside stems. The plants lodge and put forth number of green secondary tillers but the earheads produced are chaffy.

Control Measures

- Before transplanting swarming crop debris in water near the bunds of fields should be collected and destroyed.
- Use of resistant varieties.
- Avoidance of stagnant water and allowing the soil to bake before irrigation.
- Apply balanced and judicious doses of fertilizers.
- Keeping shallow water and early half of rice crop and delaying drainage prior to harvest.
- Burning of stubbles or straw reduces the inoculums in the field.

8. Khaira Disease

Symptoms : Affected plants are stunted in growth. Chocolate dark brown or reddish brown pigmentation occurs on surface of lower leaves after 3-4 weeks of transplanting. The disease appears in patches and under severe deficient conditions the entire mass of leaves collapses. The roots become brown and their growth retards completely.

Control Measure

- Spray the crop with 1.0 kg of zinc sulphate and 4-5 kg of urea separately mixed in 200 liters of water. Repeat the spray after 10 days intervals, if necessary.

रजिस्ट्रार ऑफ न्यूजपेपर्स, नई दिल्ली नं. 19451/69

हमारी निःशुल्क दूरभाष सेवाएं

हिसार : 1800 180 3001 सोमवार, बुधवार, शुक्रवार
समय : 10-12 बजे

बावल : 1800 180 4002 सोमवार, बुधवार, शुक्रवार
समय : 10-12 बजे

करनाल : 1800 180 3111 मंगलवार, वीरवार

प्रकाशक : डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी, सह-निदेशक प्रकाशन के प्रबन्ध में चौ. च. सिं. ह. कृ. वि. मुद्रणालय, हिसार से मुद्रित एवं प्रकाशित/दिनांक 4.06.2020/मासिक